स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः।

नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक । सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीतिसे पालन करते जीव निरन्तर ।
भक्ति अधोक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर॥

वर्ष १७ | गौराब्द ४८६, मास—मधुसूदन १५, वार—कारणोदशायी, वृहस्पतिवार, ३० चैत्र, सम्वत् २०२९, १३ अप्रेल, १९७२ | संख्या १०-११

मार्च-अप्रेल १९७२

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

जरासन्धरुद्धनृपतिनां श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १०।७०।२५-३०)

कृष्ण कृष्णप्रमेयात्मन् प्रपन्नभयमञ्जन ।
वयं त्वां शरणं यामो भवभीताः पृथग्धियः ॥ २५ ॥

जरासन्धद्वारा बन्दी बनाये गये राजाओंने इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति की थी—

हे शरणागतोंके भय हरण करनेवाले ! हे अप्रमेयस्वरूप कृष्ण ! भवभीत एवं विषयासक्त हम आपके शरणापन्न हो रहे हैं ॥२५॥

लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ।
यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥२६॥

हे देव ! निषिद्ध एवं काम्य कर्मसमूहमें निरत जो सभी व्यक्ति आपके द्वारा वर्णित पंचरात्र आदि शास्त्रोक्त आपकी सेवारूप अपने मंगल कार्यसे विमुख हो गये हैं एवं अपने जीवन तथा जीवन सम्बन्धी आशा-अभिलाषाओंमें भटक रहे हैं, उन सभी व्यक्तियोंकी जीवनाशाको आप महाबलवान कालरूपसे समूल विनष्ट कर देते हैं। हम ऐसे कालरूपी आपको प्रणाम करते हैं ।।२६।।

लोके भवान् जगदिनः कलयावतीर्णः सद्रक्षणाय खलनिग्रहणाय चान्यः ।
कश्चित् त्वदीयमतियाति निदेशमीश किं वा जन स्वकृतमृच्छति तन्न विद्मः ।।२७।।

हे प्रभो ! जगतके अधीश्वर आप साधुजनोंकी रक्षा एवं दुर्जनोंके निग्रहके लिए इस लोकमें अपने अंशके (बलदेवके) साथ अवतीर्ण हुए हैं। इस अवस्थामें जरासन्ध आदि दुर्जन लोग आपके शासनका उल्लंघनपूर्वक हमें दुःख प्रदान कर रहे हैं या हम अपने कर्मके द्वारा दुःख भोग कर रहे हैं—यह हम समझ नहीं पा रहे हैं ।।२७।।

स्वप्नायितं नृपसुखं परतन्त्रमीश शश्वद्भयेन मृतकेन धुरं वहामः ।
हित्वा तदात्मनि सुखं त्वदनीहलभ्यं क्लिश्यामहेऽतिकृपणास्तव माययेह ।।२८।।

हे प्रभो ! हमारे विषयसाध्य राजसुख स्वप्नकी तरह विनष्ट हो चुके हैं, परन्तु इस समय हम लोग निरन्तर भयातुर मृततुल्य या मर्त्यशील शरीरद्वारा केवल स्त्री-पुत्रादिकी चिन्तारूप भार ही वहन कर रहे हैं। विशेषकर इस मर्त्यलोकमें आपकी मायासे मोहित होकर अति दीनाभावापन्न होनेके कारण हम लोग निष्काम व्यक्तियोंद्वारा प्राप्य स्वतःसिद्ध सुख परित्यागपूर्वक क्लेश ही भोग कर रहे हैं ।।२८।।

तन्नो भवान् प्रणतशोकहरांघ्रियुग्मो बद्धान् वियुङ्क्ष्व मगधाह्वयकर्मपाशात् ।
यो भूभुजोऽयुतमतङ्गजवीर्यमेको बिभ्रद् रुरोध भवने मृगराडिवावीः ।।२९।।

हे देव ! आपके पदयुगल सेवकोंके सर्वविध संताप दूर करनेमें समर्थ हैं; अतएव आप जरासन्ध द्वारा बन्धन प्राप्त हमें विमुक्त कीजिए। सिंह जिस प्रकार मेष (भेड़) समूहको आबद्ध करता है, उसी प्रकार दस हजार हाथीके बलधारी जरासन्धने एकाकी अपनी पुरीमें हम बीस हजार नरपतियोंको आबद्ध कर रखा है ।।२९।।

यो वै त्वया द्विनवकृत्व उदात्तचक्र भग्नो मृधे खलु भवन्तमनन्तवीर्यम् ।
जित्वा नृलोकनिरतं सकृदूढदर्पो युष्मत्प्रजा रुजति नोऽजित तद्विधेहि ।।३०।।

हे उद्यतसुदर्शन चक्रके धारण करनेवाले ! यह जरासन्ध आपके साथ अठारह बार संग्राममें सत्रह बार पराजित होकर अन्तमें एकबार अनन्तवीर्यशाली मनुष्य देहाश्रित आपको पराजित करनेके कारण अत्यन्त गर्वान्वित होकर आपकी प्रजारूपी हमें उत्पीड़न प्रदान कर रहा है। अतएव हे अजित ! इस विषयमें जो कुछ समुचित हो, वह करनेकी कृपा करें ।।३०।।

।। इति जरासन्धरुद्धनृपतिनां श्रीकृष्णस्तोत्रं समाप्तम् ।।

।। इति जरासन्धरुद्धनृपतियोंका श्रीकृष्णस्तोत्र समाप्त ।

श्रीमध्वाविर्भाव

आनन्दतीर्थनामा सुखमयधामा यतिर्जीयात् ।
संसाराणंवतरणि यमिह जनाः कीर्त्तयन्ति बुधाः ॥

मैं सर्वप्रथम आनन्दतीर्थ नामक श्रीमध्व-मुनिको संभ्रमपूर्वक अभिवादन करता हूँ। वे जययुक्त हों । पण्डित व्यक्ति उन्हें संसार सागरसे पार होनेकी नौकाके साथ तुलना किया करते हैं। वे यतिराज सुखमय धाम-स्वरूप हैं। आज उनका आविर्भाव दिवस है।

बंगालमें श्रीमन्महाप्रभुके अनुगत गौड़ीय सम्प्रदायके सभी व्यक्ति ही उन वृद्ध वैष्णवाचार्यके अनुगत हैं । उनका दूसरा नाम श्रीमध्वमुनि है। उनके नामानुसार ही इस मठका नामकरण हुआ है । उन श्रीपाद आनन्दतीर्थ या पूर्णप्रज्ञके अठारहवें अधस्तन श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु हैं एवं सत्रहवें अधस्तन श्रीअद्वैत प्रभु एवं श्रीनित्यानन्द प्रभु हैं। इन तीनों प्रभुओंने श्रीमध्वमुनिको अपनी गुरु-परम्परामें स्वीकार किया है। श्रीमध्व-मुनि केरल प्रदेशके उत्तरांश (वर्त्तमान केनारा जिला) में आविर्भूत हुए थे। इन महात्माने भारतवर्षमें पंचोपासनाके बदलेमें एकमात्र विष्णु-उपासनाकी ही कर्त्तव्यता प्रचार की थी। उनके पूर्व मायावादाचार्य शिवगुरुतनय श्रीशंकरपादने आर्य धर्म-संस्थापनकी चेष्टा की थी। श्रीमध्वाचार्यने पुनः उस आर्य धर्ममें भगवदानुगत्य या भगवत्सेवाका ही प्रचार किया । श्रीमध्वमुनिने अंगुलि निर्देशपूर्वक श्रद्धालु जगद्वासियोंको यह दिखलाया कि जीवोंके अधिष्ठानमें जो नित्य भगवत्सेवा-तात्पर्य है, वही आस्तिक्यवाद का आधार-स्वरूप है। भगवानके आनुगत्यको छोड़कर जीवोंकी अन्य गति नहीं है । शिवगुरुतनय शंकराचार्यने मालाबार जिलाके कालाडि गाँवमें जन्म ग्रहण किया था । शंकरजीके आविर्भावके पहले भारतवर्ष बौद्ध या वेद-विरुद्धवादसे प्लावित हो रहा था। शंकरा-चार्यने वेदविरुद्धवाद खण्डन कर वर्णाश्रम धर्मका प्रवर्त्तन किया। इनके पहले बौद्ध एवं जैन लोगोंके नाना प्रकारके अवैदिक वर्णधर्मके द्वारा भारतवर्ष आच्छन्न था । भागवतमें कहा गया है—

'बुद्धो नाम्नाञ्जनसुतः कीकटेषु भविष्यति'
(भा० १। ३। २४)

बौद्ध एवं जैन लोगोंने वैदिक धर्मके विरुद्धमें बहुत बाधा प्रदान की थी। शंकरा-चार्यने वेद-नियत धर्म प्रवर्त्तन किया । वर्त्तमान हिन्दू समाज बहुत कुछ शंकरके अनुगत है। श्रीशंकर वर्त्तमान उत्तरभारतमें वर्णाश्रमके एकमात्र कर्णधार हैं । वे बौद्ध-धर्मका निराकरण करनेके लिए वेदके आंशिक उद्देश्यके स्थापनकर्ता—वे एकेश्वरवादके प्रवर्त्तक हैं। वेदशास्त्रके कर्मशाखी व्यक्ति फलकामी होनेके कारण बहुतसे देवताओंके उपासक हैं । इन्द्र, एकादश रुद्र, अष्ट वसु, अग्नि, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, विष्णु आदि कई देवताओंकी उपासनाकी बात वेदोंमें देखी जाती है। इस कर्म या सकाम उपासनाके मूलमें 'मैं दुर्बल हूँ, मैं प्रभुका

अनुगत हूँ, देवताओंकी अधीनतामें रहने पर सुख प्राप्त होगा'—ऐसी प्रवृत्ति वर्त्तमान है। कर्मकाण्डी व्यक्ति इस मतके आश्रित हैं। बौद्धोंने इसमें बाधा प्रदान की एवं जैन-धर्ममें इसकी प्रतिक्रिया देखी गयी। जैनोंमें भी २४ व्यक्ति अवतार, अष्ट वसु, पश्चात् बहुतसे ग्राम्य देवता, पर्वत एवं वृक्षादियोंके ईश्वरत्वकी कल्पना की थी। उत्तर भारत, नेपाल, भूटान, चीन आदि देशोंमें ये दोनों अवैदिक उपासनाएँ प्रचलित हुई थीं। भिन्न-भिन्न ग्रामके भिन्न-भिन्न देवताविशेष थे। एक ग्रामके देवता दूसरे ग्रामके देवतासे श्रेष्ठ हैं, ऐसा प्रतिपादन करना एक महान् बहादुरीका कार्य समझा जाने लगा था। वेदका प्रतिपाद्य धर्म कर्मकाण्डी व्यक्तियोंके हाथमें पड़कर संकीर्ण साम्प्रदायिकताकी सृष्टि होने लगी थी।

बह्वीश्वरवादी व्यक्ति परस्पर विवाद करते थे—'इस पहाड़ का देवता श्रेष्ठ है, इस पहाड़का देवता निकृष्ट है' इत्यादि। पहले धर्मके अधीन जातीयता थी, वर्त्तमानमें जातीयताके अधीन धर्म है। इन सभी साम्प्रदायिकता एवं उसके मूलमें द्वन्द्व एवं विद्वेषके हाथसे छुटकारा पानेके लिए समन्वय या ऐक्यकी एक पन्था कल्पित हुई थी। इस प्रकारकी एक Cosmopolitan (विश्व-बन्धुत्व) प्रवृत्ति तात्कालिक सभ्य मानव-जाति एवं पण्डित मण्डलीके भीतर उदित हुई थी। शैव, शाक्त, वैष्णव, गानपत्य आदि भिन्न-भिन्न उपासकोंकी परस्पर प्रतिद्वन्द्विता निवारण करनेके लिए मानवोंके मनने तथाकथित समन्वय एवं मैत्रीके छायातरु रूपसे ऐसे एक एकत्ववाद की सृष्टि की जिसके द्वारा पंचोपासनाके साम्प्रदायिक विद्वेषका अन्त हो सके। यह मानव-मनःकल्पित समन्वयवाद जनसाधारणके निकट बहुत ही सुन्दर प्रतीत हुआ। Discordant Elements (प्रतिकूल सामग्रियाँ) एकत्र होकर किसी एक Common flag (सर्वमान्य विचार) के भीतर आने पर उसका नाम समन्वय है। 'उपास्य'—सृष्टि की कारखाना मन हुआ। पुनः उपास्यको तोड़-मरोड़ कर एकीभूत करनेका कर्त्ता भी मानव मन ही हुआ। उस समय बौद्ध और जैन विचार-प्रणाली आकर उपस्थित हुई। छोटे-छोटे धर्म वृहत् हिन्दु धर्ममें प्रविष्ट होकर अपने क्षुद्र घेरेको खो बैठे। शंकरविजय ग्रन्थ पाठ करनेसे जाना जाता है कि कापालिक, योगी एवं नानाप्रकारके देवदेवीके उपासक लोग श्रीशंकरके वेदान्तविचारके प्रतिपक्ष हो गये थे। श्रीशंकरके विचार फलसे परवर्त्तीकालमें वे भी शंकर-मतके आनुगत्य ग्रहण करनेके लिए बाध्य हुए।

शांकर-मत यथार्थ वैदिक मत है या नहीं, इस विषयमें सात्वत व्यक्तियोंने शंका-उत्थापन किया है। तब यह निःसन्देह है कि वेदविरुद्ध बौद्धमतसे भिन्न रूपसे शंकराचार्यके प्रच्छन्न बौद्धवाद प्रचार करनेकी आवश्यकता हो गयी थी। भगवानके नित्य नाम-रूप-गुण-लीला आदि स्वीकृत होनेसे सार्वजनीनता का अभाव होगा—इस आशयसे ही प्रच्छन्न-बौद्धवाद स्थापित हुआ। सर्व जातीय साधारण पंचोपासनाको वेदशास्त्रके अनुगत कहकर प्रचार करनेके उद्देश्यसे ही यह मतवाद सृष्ट हुआ है। इसकी प्रयोजनीयता सार्वकालिक नहीं है—तात्कालिक मात्र है।

बौद्धधर्मके विरुद्धमें वेदके आनुगत्य का प्रचार मूर्ख व्यक्तियोंकी प्ररोचना या प्रवृत्ति करानेके लिए ही है। यह बुद्धिमानके लिए ग्रहणीय नहीं है। शंकर की विचार-प्रणालीकी आलोचना करने पर देखा जाता है कि शंकराचार्यने बौद्धानुकूल तात्कालिक लोकवाद स्वीकार किया था, किन्तु उनका व्यक्तिगत विचार उस प्रकार नहीं था। निर्गुण ब्रह्ममें एकीभूत हो जाना ही उनका लक्ष्य था। उन्होंने उपासना-प्रणालीका नित्यत्व स्वीकार नहीं किया—उनका दशोपनिषद्भाष्य ही उसका प्रमाण है।

वर्त्तमान हिन्दु नामधारी व्यक्तियोंमें अधिकांश व्यक्ति ही शंकर-शासित समाजमें वास कर रहे हैं। 'हिन्दु' कहनेसे आजकल 'पंचोपासक' को ही समझा जाता है। किन्तु इन पंचोपासकोंकी उपासना-प्रणाली नित्या नहीं है। उपासकों की अपनी-अपनी अभीष्ट-सिद्धि प्राप्त हो जाने पर उपासना की आवश्यकता नहीं समझा जाता। इसलिए उपासना अनित्य कार्य मात्र रह जाता है।

जगतमें 'भोग' एवं 'त्याग' नामक दो बातें वर्त्तमान हैं। 'भोग' एवं 'त्याग' को बनाये रखनेका नाम 'समन्वय' है। भोगी व्यक्ति पाँच प्रकारके खजानचियों (विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश एवं सूर्य) के निकटसे भोग्य-वस्तु प्राप्त कर इस लोकमें एवं परलोकमें दुःखनिवृत्ति तथा सुखकी इच्छा करते हैं।

शाक्यसिंह भोगका परिणाम देखकर दुःखी हुए तथा वे कर्मकाण्डके विरुद्ध दण्डायमान हुए। उन्होंने त्याग और तपस्या का विचार प्रचार किया। उनके मतानुसार तपस्या-त्यागादि जो कोई भी कठिन साध्य उपाय ही क्यों न हो, अनुभव शक्तिके राहित्यकी ही आवश्यकता है। उनके मतसे वैसा चेतन-राहित्य ही 'निर्वाण' है या 'मुक्ति' है। इस प्रकार की 'अचित्परिणति' रूपा मुक्तिका विचार चिदचित्के समन्वय चेष्टासे ही उद्भूत है। श्रीपाद शंकरने भी प्रच्छन्न रूपसे बहुत कुछ शाक्यसिंहका मत ही स्थापन किया। श्रीशंकरकी चेष्टा बाहरी दृष्टिके अनुसार शाक्यसिंहके प्रतिकूल होनेपर भी कार्यतः शंकराचार्यने शाक्यसिंहके प्रच्छन्न अनुगत कहकर अपने मतवादका परिचय दिया है। सांख्यकार कपिलके मतानुसार प्रकृतिलीन अवस्थामें ही 'मुक्ति' एवं सत्त्वादि गुणत्रयके प्रकाशमें ही मायाकी क्रिया, भोग या कर्म है। श्रीशंकरजीने इस सांख्यवादके विपरीत भावरूप निर्गुणता ग्रहण कर चिन्मात्रवादका प्रचार किया। "असतो सदजायत"—अर्थात् अव्यक्तसे व्यक्त जगत प्रकाशित हुआ—इस श्रुतिमंत्रमें जो शक्ति-परिणामवाद निहित है, उसे स्वीकार करनेपर अविकारी ईश्वर को 'विकारी' एवं श्रीगुरु-व्यासदेव को 'भ्रान्त' कहना होगा—यह युक्ति दिखलाकर मायावादाचार्य शंकरजीने 'विवर्तवाद' का स्थापन किया था। यथार्थतः वेदान्तसूत्रमें ईश्वरकी इच्छामात्रसे उनकी अविचिन्त्य शक्तिके कार्यविकार रूपसे यह विश्व हुआ है—इस प्रकारके शक्तिपरिणाम-वाद का ही उद्देश्य है।

"परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते"—इस श्रुतिमंत्रमें ब्रह्मकी एक अविचिन्त्या परा-शक्ति स्वीकृत हुई है। एक वस्तुमें दूसरे वस्तु का भ्रम ही 'विवर्त्त' है। जिस प्रकार

रस्सीमें सर्प, शुक्ति (सीप) में चांदीका भ्रम आदि। बद्धजीव जब जड़देहमें आत्मबुद्धि करते हैं, तब ही विवर्त्तका उदाहरण उपस्थित होता है। उस विवर्त्तदोषको मूलविश्वतत्त्व एवं जीव-तत्त्वपर आरोप करना भगवानकी चिच्छक्तिको अस्वीकार करनेके सिवाय और कुछ भी नहीं है। यह प्रच्छन्न नास्तिकता ही है। विवर्त्तवाद (Idealism) के मतानुसार वस्तुका अस्तित्व इन्द्रिय ज्ञानका उपयोगी है। यह विवर्त्तवाद neutralised (समताप्राप्त) होने पर गुणजात जगत और नहीं रहेगा एवं त्रिपुटीका विनाश होनेपर विवर्त्तस्वरूप जीव एवं जगत्का पृथक् अस्तित्व नहीं रहेगा। इसलिए शाक्यसिंहके मतानुसार प्राप्यमुक्ति जिस प्रकार अचिद्-विलासमें अवस्थित है, उसी प्रकार शंकराचार्यके मतानुसार वह मुक्ति चिन्मात्रवाद या चिद्विलासकी अनवस्थिति है। निर्वाण या द्रष्टा, दृश्य एवं दर्शन—इस त्रिपुटीका विनाशरूप नास्तिकता ही जब चरम लक्ष्य है, तब वे जिस पथसे ही क्यों न चलें, सभी ही समान हैं। इसका ही नाम समन्वयवाद है। इस समन्वयवादमें यह सुविधा है कि जिस किसी भी भ्रान्तमतको इसके भीतर प्रवेश कराकर एक स्वतन्त्र मत या पथविशेष कहकर परिचय देते हुए उसकी आत्मरक्षा हो सकती है। इसीलिए विष्णुविरोधी मनोधर्मी जगतमें चिज्जड़ समन्वयवादका प्रचुर आदर देखा जाता है।

समन्वयवादके द्रष्टा भगवानका नित्य आनुगत्य स्वीकार नहीं करते। उनका दिखावटी या व्यवहारिक आनुगत्य-ज्ञान यथार्थमें भगवानका आनुगत्य नहीं है। वह कौशलसे कार्यसाधन रूप नास्तिकताका ही रूपान्तर है। बह्वीश्वरवाद (विशेषतः पंचोपासना) से ही समन्वयवादकी सृष्टि है एव यह समन्वयवाद मानव-कल्पित है।

असाम्प्रदायिकता या उदारताके नामसे काल्पनिक अनित्य सत्य की छलना अर्थात् नास्तिकता एवं अविसंवादित नित्यसत्यरूप आस्तिकताके समन्वयका प्रयास—केवल भक्तिहीन एवं भगवद्बहिर्मुख लोक-रञ्जनरूप प्रक्रियासे ही उद्भूत है। ये सभी असाम्प्रदायिक नामधारी व्यक्ति कार्यतः मनःकल्पित भगवद्बहिर्मुख सम्प्रदायके ही स्रष्टा हैं।

इस प्रकार विष्णुविरोधमूला समन्वयचेष्टाका प्रयास केवल आधुनिक नहीं है, बहुत पहले भी यह जगतमें प्रचलित था। यह देखकर करुणावशतः दो भगवत्-प्रेरित परम उदार महापुरुष जगतमें आविर्भूत हुए थे। इन सभी भगवद्बहिर्मुख असाम्प्रदायिक व्यक्तियोंको भगवदनुगत व्यक्तियोंसे पृथक् करनेकी वासनासे 'असत् साम्प्रदायिक' एवं 'सत् साम्प्रदायिक' आख्या प्रदान की। लक्ष्मण देशिक (रामानुजाचार्य) इस विषयमें अग्रणी हुए थे। सत् साम्प्रदायिकोंका सम्प्रदाय मनगढ़न्त नहीं है—वे लोग कपट उदारताके नाम पर नास्तिकताको प्रश्रय नहीं देते। भगवान् ही एकमात्र 'सत्' अर्थात् नित्यसत्त्व-विशिष्ट वस्तु हैं। उन भगवान्की अचिन्त्य शक्ति भी नित्या है। सत् साम्प्रदायिक व्यक्ति उन नित्य-सत्त्वविशिष्ट अविचिन्त्य शक्तिसमन्वित श्रीभगवानके नित्य

उपासक हैं, इसलिए वे ही एकमात्र परम उदार हैं। जगतमें अधोक्षज भगवान्‌के सेवकोंकी अपेक्षा और कोई भी उदार नहीं हो सकते। जड़ीय उदारता यथार्थ उदारता नहीं, वह तो इन्द्रियतर्पणके उद्देश्यसे उदारताका भान या कपटतामात्र है। समन्वयवादियोंने उदारताकी छलना कर विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य—इनमेंसे किसी एक की उपासना (?) आरम्भ की। किन्तु जिनकी इतने काल तक उपासना की, पश्चात् उन उपास्यके ऊपर ही खड्ग निक्षेप कर उन्हें तोड़कर फेंक दिया। चूना लगाना हुआ, मरम्मत की गई, फिर कुछ काल पीछे पूर्णतः तोड़कर फेंक दिया गया। जब इस प्रकार भगवानका नित्य सविशेषत्व एवं नित्य आराधना अस्वीकृत होने लगी, तब ही भगवान्‌की इच्छासे आन्ध्र प्रदेशके महाभूतनगरीमें श्रीलक्ष्मणदेशिक नामक एक परम शक्तिशाली महापुरुष आविर्भूत हुए। इन्हीं महापुरुषका दूसरा नाम श्रीरामानुजाचार्य था। श्रीरामानुजाचार्यके पश्चात् श्रीमध्वाचार्य या श्रीपूर्णप्रज्ञ हुए। जब जब कोई भी भगवदानुगत्यगुक्त सत्यधर्मकी कथा जगतमें प्रचारित होती है, तब तब जगतके विष्णुविरोधी मनुष्य लोग एवं देवतातक भी उसका परम विरोध करते हैं।

सत्य युगमें हरिभक्त श्रीप्रह्लादके प्रति विरोध-चेष्टा देखकर उसका दमन करनेके लिए श्रीनृसिंहदेवजी का आविर्भाव हुआ था। पाखण्डी लोगोंका आत्मविनाश करनेके लिए ही भगवानमें क्रोधका संचार होता है। पाखण्डी व्यक्ति श्रीहरि एवं हरिभक्तोंका विरोध करते करते अनन्त विनाशके पथकी ओर दौड़ते हैं। जब श्रीरामानुजाचार्य प्रकट हुए, तब उनके प्रचारमें अनेकों विष्णुविरोधी व्यक्तियोंने बाधा प्रदान की। गुरुवत्सल महोदय रामानुजाचार्यकी तरह असीम प्रतिभाशाली व्यक्तिको अपने शिष्य कहकर परिचय देनेमें अपनेको कृतार्थ समझते थे, जब रामानुजाचार्यका यशःसौरभ समस्त दिशाओंमें फलने लगा, तब वे भी मत्सरतावश श्रीरामानुजके शत्रु हो पड़े। श्रीमद्भागवतमें शुक्राचार्य एवं बलिके चरित्रमें ऐसा ही दृष्टान्त पाया जाता है। रामानुजाचार्यको बारह वर्ष तक अज्ञातवासमें रहना पड़ा था। आज भी भारतवर्षमें श्रीरामानुजाचार्यके अनुगत प्रायः तीन कोटि व्यक्ति वास कर रहे हैं। ये लोग जिस ग्राममें वास करते हैं, उस ग्राममें असत् सम्प्रदायके व्यक्तियोंका वास नहीं है।

भारतवर्षमें 'रामानन्दी जमायेत् सम्प्रदाय' नामक एक प्रकारका सम्प्रदाय देखा जाता है। ये रामानन्द श्रीरामानुजके सोलहवें अधस्तन हैं। ये ठीक श्रीरामानुजाचार्यके सम्पूर्ण अनुगत नहीं हैं। इनके अनुगत व्यक्ति लोग श्रीरामानुजाचार्यके एकनिष्ठ सदाचारसे कुछ दूर हट गये हैं। ये लोग साधारण व्यक्तियोंके निकट उपासक सम्प्रदायके नामसे परिचित होने पर भी चरममें शङ्करजीके निर्विशेषवाद एवं बहु देवताओंकी उपासनाको बहुत कुछ ग्रहण किये हुए हैं। सम्पूर्ण गुरुके आनुगत्य एवं शास्त्रीय आलोचनाके अभावसे ही उनमें यह विपत्ति प्रवेश कर गई है। अयोध्या, पुरी आदि स्थानोंमें रामानन्दी जमायेत् सम्प्रदायके अखाड़े हैं। श्रीरामानुजके

अनुगत व्यक्ति एकनिष्ठ या ऐकान्तिक विष्णु-सेवक हैं। मैंने दक्षिण देशमें भ्रमण करते समय जब दक्षिण मथुरा या मादुरामें मीनाक्षी देवीके मन्दिरमें प्रवेश किया, तब विष्णुविरोधी शाक्त लोग मुझसे असंख्य प्रश्न करने लगे—"महात्मन्! आपका वैष्णव-वेष देखते हैं, आप किस प्रकार देवी मन्दिरमें प्रवेश कर रहे हैं"? जब मैंने 'वैष्णवानां यथा शम्भुः'—शम्भुको वैष्णवश्रेष्ठ जानकर नमस्कार एवं दर्शन कर जाऊँगा, ऐसा सोचकर शिव कांचीमें प्रवेश किया, तब भी शैव लोग मेरे निकट ऐसे ही प्रश्न करने लगे। क्योंकि दाक्षिणात्यमें कोई भी श्रीवैष्णव विष्णुको छोड़कर दूसरे देवताके मन्दिरमें प्रवेश नहीं करते। पंचोपासक लोग विष्णु मन्दिरमें विष्णुको दूसरे चार प्रकारके देवताओंके अन्यतम रूपसे दर्शन करते हैं।

श्रीमध्वानुग व्यक्ति दूसरे देवताओंको विष्णुभक्तके रूपमें जानते हैं। वे लोग विष्णु-के पारतम्य एवं विष्णु-प्रसाद द्वारा दूसरे देवताओं की पूजा करते हैं। उडुपीके उत्तरांशमें एकस्थानमें शिवके ऊपरी भागमें श्रीविष्णुशिला संरक्षित होकर पूजित होते हैं। श्रीअनन्त पद्मनाभके हाथके निम्न भागमें श्रीशिव विग्रह वर्त्तमान हैं। देवता एवं पितृ आदि देवपूजाका श्रीमध्व-सम्प्रदायमें अनादर नहीं किया गया है। तथापि वे लोग पंचोपासनाके नामपर अड़समन्वयके पक्षपाती नहीं हैं।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

श्रीकृष्णका वनसे प्रत्यागमन

ब्रज कौं, देखि, सखि! हरि आवत।
कटि तट भुअग पीतपट राजत, अद्भुत भेष बनावत॥
कुंडल तिलक चिकुर रज मंडित, मुरली मधुर बजावत।
हँसि मुसुकानि, बंक अवलोकनि, मनमथ कोटि लजावत॥
पीरि, धौरी, घूमरि, गोरी लै लै नाऊँ बुलावत।
कबहूँ गान करत अपनी रुचि करतल तार बजावत॥
कुसुमित दाम मधुप कुल गुंजत, संग सखा मिलि गावत।
कबहुंक नृत्य करत कौतूहल, सप्तक भेद दिखावत॥
मंद-मंद गति चलत मनोहर, जुवतिनि रस उपजावत।
• आनँद कंद जसोधा नंदन 'सूरदास' मन भावत॥

(सूरदासजी)

प्रश्नोत्तर

(भक्ति-प्रातिकूल्य)

(गताङ्कसे आगे)

३८– परिछिद्रानुसन्धान क्यों परित्याग करना चाहिए ?

"परदोषानुसन्धान केवल अपनी कुप्रवृत्ति-परिचालनासे ही हुआ कर ताहै। वह सर्व प्रकारसे परित्याज्य है।"

—'प्रजल्प' स० तो० १०।१०

३९– परचर्चा भक्तिप्रतिकूल क्यों है ?

"अकारण परचर्चा करना अत्यन्त भक्ति-विरोधी कार्य है। बहुतसे व्यक्ति आत्म-प्रतिष्ठा स्थापन करनेके लिए परचर्चा किया करते हैं। कोई-कोई व्यक्ति स्वभावतः दूसरे के प्रति विद्वेषपूर्वक उनके चरित्रकी चर्चा किया करते हैं। जो व्यक्ति इन कार्योंमें व्यस्त होते हैं, वे अपने चित्तको कदापि कृष्णपादपद्ममें स्थिर नहीं कर सकते। पर-चर्चाको सर्व प्रकारसे परित्याग करना भक्ति-साधकका कर्त्तव्य है। किन्तु भक्ति-साधन के लिए बहुतसी अनुकूल बातें हैं, वे परचर्चा होने पर भी उससे दोष नहीं होता।"

—'प्रजल्प', स० तो० १०।१०

४०– ग्राम्य संवादपत्र-पाठ क्या भक्ति-प्रतिकूल है ?

"संवादपत्रमें बहुत सी अनावश्यक बातों का समावेश रहता है। भक्तिसाधकोंके लिए संवाद-पत्र पाठ करना बहुत ही अनिष्टकर कार्य है। तब कोई विशुद्ध भक्तकी बात उसमें वर्णित रहने पर उसे पाठ किया जा सकता है।"

—'प्रजल्प' स० तो० १०।१०

४१– बहिर्मुख व्यक्तियोंके साथ आलाप करनेवाले या ग्राम्य उपन्यास पाठक क्या रूपानुग भक्त बन सकते हैं ?

"ग्राम्य व्यक्ति आहारादि कर प्रायः ही धूम्र पान करते-करते अन्य बहिर्मुख लोगोंके साथ वृथा बातोंमें प्रवृत्त होते हैं। उनके लिए रूपानुग होना बड़ा ही कठिन है। उपन्यास पाठ करना भी वैसा ही है। तब यदि श्रीभागवतके पुरञ्जन-उपाख्यानकी तरह उपन्यास पाया जाय, तो उसे पाठ करनेसे भक्तिमें बाधा नहीं होती, बल्कि उससे लाभ है।"

—'प्रजल्प' स० तो० १०।१०

४२– गृहत्यागी और गृहस्थ भक्त क्या ग्राम्य-कथा श्रवण-कीर्त्तन कर सकते हैं ?

"गृहत्यागी वैष्णवोंके लिए ग्राम्य-कथा सम्पूर्ण रूपसे परिहार्य है। किन्तु गृही वैष्णवोंके लिए भक्तिकी अनुकूलताके अनुसार थोड़े बहुत परिमाणमें स्वीकार्य है।"

—'प्रजल्प' स० तो० १०।१०

४३–मूल-विधि क्या है ? उन्नतिकालमें पूर्व-विधि-निष्ठा त्यागपूर्वक परविधि अवलम्बन न करनेसे क्या दोष उपस्थित होता है ?

"कृष्ण-विस्मृति कदापि कर्त्तव्य नहीं है,

इसी मूल निषेधसे ही समस्त निषेध नियम हुए हैं। इस मूलविधिका स्मरण कर साधक लोग उन्नतिकालमें पूर्व-विधिकी निष्ठा परित्याग कर पर-पर विधिका अवलम्बन करेंगे। ऐसा नहीं करनेसे वे नियमाग्रह दोषसे दूषित होकर उन्नत-गति प्राप्त करनेमें असमर्थ होंगे।"

—'नियमाग्रह', स० तो० १०।१०

४४- पत्नी भक्तिसाधनके प्रतिकूल हो, तो क्या उसका संग कर्त्तव्य है ?

"पत्नी यदि भक्तिसाधनके प्रतिकूल हो, तो बहुत यत्नके साथ उसका संग परित्याग करना उचित है—वैष्णवाचार्य श्रीमद्रामानुजाचार्यका चरित्र इस विषयमें विचार करने योग्य है।"

—'जनसंग' स० तो० १०।११

४५- गृहस्थोंके लिए आवश्यकतासे अधिक अर्थ-संग्रह क्या भक्ति-प्रतिकूल है ?

"गृही व्यक्ति संचय एवं उपार्जनमें अधिकार प्राप्तकर भी प्रयोजनसे अधिक अर्थ संग्रह करनेकी चेष्टा करने पर उनके भक्ति-साधन एवं कृष्णकृपा प्राप्तिमें बाधा उपस्थित होती है।"

—'अत्याहर' स० तो० १०।९

४६- गृहस्थोंके लिए शोकादिके वशीभूत हो जाना क्या भक्ति-प्रतिकूल है ?

"गृही लोगोंके लिए स्त्री-पुत्रादिके निधन पर बहुत शोक होता है, किन्तु भक्ति-साधकोंके लिए वे घटनाएँ अकस्मात् उपस्थित होनेपर अधिक काल तक शोक करना उचित नहीं है। अल्पकालमें शोक परित्याग कर कृष्णानुशीलनमें नियुक्त होना ही उनका कर्त्तव्य है।"

—'तत्तत्कर्मप्रवर्त्तन' स० तो० ११।६

४७- साधकों के लिए शोक-क्रोधादि क्यों परित्याज्य हैं ?

"शोक-क्रोध आदि समस्त वेग ही वैष्णव-साधक लोग परित्याग करेंगे। अन्यथा निरन्तर कृष्णस्मृतिमें विशेष बाधा उपस्थित होगी।"

—'तत्तत्कर्मप्रवर्त्तन' स० तो० ११।६

४८- शोक-मोहादि आत्मीय वियोगमें करने पर उस हृदयमें कृष्णको स्थान प्राप्त नहीं होता।"

—'भक्त्यानुकूल्य विचार' श्रीभा०म०मा० १५।९० बंगानुवाद

४९- संन्यासी वैष्णवोंकी संख्या अधिक होनेपर क्या अशुभ हो सकता है ?

"संन्यासी-वैष्णव की संख्या अल्प होना ही स्वाभाविक है। अधिक होनेपर वह उत्पातमें परिगणित होती है।"

—'विषय और वैराग्य' स० तो० ४।२

५०- किसी द्रव्याभावमें शोकाभिभूत होना क्या गृहत्यागीके लिए उचित है ?

"गृहत्यागियोंके लिए कपड़े, कमण्डलु या भिक्षाद्रव्य नहीं रहने पर या किसी पशु या मनुष्यद्वारा उसका अपहरण होनेपर शोक नहीं करना चाहिए।"

—'तत्तत्कर्मप्रवर्त्तन' स० तो० ११।६

५१- गृहत्यागीके लिए किसी भी प्रकार का स्त्री संभाषण क्या समर्थन योग्य है ?

"गृहत्यागी पुरुषके लिए किसी प्रकारसे स्त्री-संस्पर्श या स्त्री-संभाषण नहीं होना चाहिए। होने पर भक्तिसाधन सम्पूर्णरूपसे

विनष्ट होगा। वैसे भ्रष्टाचारीका संग सर्व-प्रकारसे परित्याग करने योग्य है।"

—'जनसंग' स० तो० १०।११

५२– वैरागीके लिए विशेष रूपसे क्या-क्या निषिद्ध हैं ?

"स्त्री-पुरुष विवाहित होकर सन्तानादि उत्पन्न करते हुए जो संसार-पत्तन करते हैं, उस संसार-सम्बन्धमें जो कुछ बातें हैं, वे सभी ही ग्राम्य बातें हैं। वैरागी वैष्णवके लिए वे सभी श्रोतव्य या वक्तव्य नहीं हैं। अच्छा खाना, अच्छा पहनना यह भी वैरागी के लिए उचित नहीं है।"

—अ० प्र० भा०, अ० ६।२३६, २३७

५३–कौन-कौनसे प्रयास भक्तिप्रतिकूल हैं ?

"ज्ञान-प्रयास, कर्म-प्रयास, योग-प्रयास, मुक्ति-प्रयास, संसार-प्रयास, बहिर्मुख जनसंग-प्रयास—ये सभी ही नामाश्रित साधकके लिऐ विरोधी तत्व हैं। इन सभी प्रयासोंद्वारा भजन नष्ट होता है।"

—'प्रयास' स० तो० १०।९

५ – जिस किसी व्यक्तिको गुरु रूपसे वरण करना क्या भक्ति-अनुकूल है ?

"सद्गुरु-लालसा जितनी ही प्रबल हो, उतना ही मङ्गल है। लालसा-निवृत्तिके लिए जिस किसी व्यक्तिको गुरुके रूपमें वरण करना उचित नहीं है।"

—'पंचसंस्कार' स० तो २।१

५८– असद्गुरु एवं असच्छिष्य परस्पर परस्परका संग त्याग न करें, तो क्या भक्ति-प्रातिकूल्य साधित होता है ?

"गुरु-शिष्यका सम्बन्ध नित्य सम्बन्ध है। जब तक परस्पर योग्यता हो, तब तक वह सम्बन्ध भङ्ग न होगा। गुरु दुष्ट होने पर शिष्य उपायरहित होकर सम्बन्ध त्याग करेंगे, शिष्य दुष्ट होने पर गुरु भी वह सम्बन्ध त्याग करेंगे। ऐसा न होने पर दोनोंका पतन संभव है।"

—'नामापराध', 'गुर्ववज्ञा' ह० चि०

५६– किन-किन कारणोंमें दीक्षा-गुरु अपरित्याज्य हैं ?

"दीक्षागुरु अपरित्याज्य होनेपर भी वे दो कारणोंमें परित्याज्य हैं—एक कारण यही है कि जब शिष्यने गुरुवरण किया था तब यदि तत्त्वज्ञ एवं वैष्णवगुरु परीक्षा न किये हों, तो कार्य-कालमें उस गुरुके द्वारा कोई कार्य न होते देखकर उन्हें परित्याग करना होता है।***द्वितीय कारण यही है कि गुरु–वरण–समयमें गुरुदेव वैष्णव एवं तत्त्वज्ञ थे, किन्तु संगदोषसे पश्चात् मायावादी या वैष्णवद्वेषी होगये—ऐसे गुरुका भी परित्याग करना वर्त्तव्य है।"

—जै० ध० २० वाँ अ०

५७– भाररहित्य और कापट्य क्या है ? ये भक्ति-प्रतिकूल क्यों हैं ?

"जो लोग अधिकार न समझकर दुष्ट गुरुके उपदेशसे उच्चाधिकार उपासना-लक्षण अवलम्बन करते हैं, वे लोग प्रवंचित भार-वाही हैं। जो लोग सम्मान और अर्थ-संचयको उद्देश्य रखते हैं, वे लोग कपट हैं। इन्हें दूर न करनेसे रागोदय नहीं होता। सम्प्रदाय-लिंग या उदासीन-लिंग द्वारा वे लोग जगत-की वंचना करते हैं।" कृ० सं० ८।१६

५८– अपरिपक्वावस्थामें कृत्रिम रूपसे विधिमार्ग परित्याग करनेपर क्या असुविधा होती है ?

"अनेक दुर्बलचित्त व्यक्ति लोग विधि-मार्ग त्याग करते हुए रागमार्गमें प्रवेश करते

हैं। वे लोग अप्राकृत आत्मगत रागकी उपलब्धि न कर पाकर विषय-विकृत रागके अनुशीलनमें वृषभासुरकी तरह आचरण कर डालते हैं। वे लोग कृष्णतेजसे हत होंगे।"

—कृ० स० ८।२१

२६– मथुरागत, द्वारकागत और व्रजगत प्रतिबन्धक क्या भजन-प्रतिकूल हैं ?

"जो लोग पवित्र व्रजभावगत होकर कृष्णानन्द–सेवा करेंगे, वे लोग विशेष यत्न-पूर्वक अठारह प्रतिबन्धक दूर करेंगे।***जो लोग ज्ञानाधिकारी हैं, वे सभी माथुर-दोषोंका वर्जन करेंगे। जो लोग कर्माधिकारी हैं, वे लोग द्वारकागत सभी दोषोंको दूर करेंगे। किन्तु भक्त लोग व्रजदूषक सभी प्रतिबन्धकों-को दूर करते हुए श्रीकृष्णप्रेममें मग्न होंगे।"

—कृ० स० ८।३०-३१

६०– ध्यानादि प्रेमोदयके अनुकूल न होने पर क्या अनर्थ उत्पन्न होता है ?

"ध्यान, धारणा एवं समाधिकालमें यदि जड़-चिन्ता दूर हो जाय तथापि प्रेमोदय न हो, तो चैतन्यरूप जीवका नास्तित्व साधित होता है। 'मैं ब्रह्म हूँ'—यह बोध यदि विशुद्ध प्रेम को उत्पादन न करे, तो वह अपने अस्तित्व का विनाशक हो पड़ता है।"

प्रे० प्र० १ म प्र०

६१– गुरु, वैष्णव एवं भगवानके प्रति कैसी विधि पालनीय है ?

"गुरुदेव, वैष्णव एवं भगवानके गृहके प्रति पाद-प्रसारणपूर्वक कदापि निद्रा में जाना चाहिए।"

—'श्रीरामानुज स्वामीका उपदेश'—१५, स०तो० ७।३

६२– नाम माहात्म्यको जो लोग अति-स्तुति समझते हैं, उनके प्रति कैसा आचरण करना चाहिए ?

"नाममें जो सभी व्यक्ति अर्थवाद करते हैं, उनका दर्शन करना उचित नहीं है। यदि घटनाक्रमसे वैसे व्यक्तियोंके साथ संभाषण हो, तो सवस्त्र गंगास्नान करना उचित है। जहां गंगा नहीं है, वहाँ अन्य पवित्र जलसे सवस्त्र स्नान करना चाहिए। वह भी यदि न हो, तो मानस-स्नान कर आत्मशुद्धि विधान करना चाहिए।"

—'नाममें अर्थवाद' ह० चि०

६३– नामापराधी व्यक्तियोंके साथ संकी-र्त्तनमें शुद्ध वैष्णव क्या योगदान करेंगे ?

"जिस संकीर्त्तन-मंडलमें नामापराधी व्यक्ति प्रधान होकर कीर्त्तन करें, वहाँ वैष्णवोंको योग देना उचित नहीं है।"

—जै० ध० २४वाँ अ०

६४– आत्मेन्द्रिय-तर्पणकर वाद्ययन्त्रादि संकीर्त्तनमें व्यवहार करना क्या भक्तिका अनुकूल है ?

"खोल (मृदंग)-करतालादि प्राचीन यन्त्रोंको छोड़कर आधुनिक एवं वैदेशिक यन्त्रोंको कीर्त्तनमें प्रवेश करानेसे बहुत कुछ रंग होता है; किन्तु श्रीभक्तिदेवीका क्रम-भंग हो पड़ता है। आजकल हम वैदेशिक व्यव-हारमें इतने मुग्ध हैं कि भजन-प्रणालीमें उसे भी प्रवेश करानेके लिए यत्न किया करते हैं।"

—'कलकत्तामें कीर्त्तन', स० तो० ११।३

६५– अपक्व भेकधारीकी संख्या-वृद्धि आशंका-जनक क्यों है ?

"भेकधारी वैष्णवोंकी संख्या वृद्धि होने पर अवश्य ही यह आशंका करनी होगी कि इसमें कलिका कोई दुष्टकार्य वर्त्तमान है।"

—'वैरागी वैष्णवोंका चरित्र विशेषतः निर्मल होना चाहिए', स० तो० ५।१०

६६- गृहत्यागी वैष्णवोंके लिए संचय करना क्या कर्त्तव्य है ?

"गृहत्यागी साधक संचय-मात्र ही नहीं करेंगे।' —'अत्याहार' स० तो० १०।६

६७–गृहत्यागी साधकोंके लिए मठ,अखाड़ा आदि आरम्भ क्या भक्तिका अनुकूल है ?

"गृहत्यागी वैष्णव मठ-अखाड़ा आदि नहीं करेंगे, उससे गृहकार्यादि हो पड़ते हैं।"

—'साधुवृत्ति', स० तो० ११।१२

६८- गृहत्यागीकी स्थूल भिक्षा क्या भक्तिका अनुकूल है ?

"गृहत्यागी विषयीकी स्थूल-भिक्षा नहीं खायेंगे एवं अर्थ लेकर वरागियोंका निमन्त्रण नहीं करेंगे।" —'साधुवृत्ति', स०तो० ११।१२

६९- गृहत्यागी के लिए राजा, विषयी एवं स्त्रीदर्शन क्या सेवानुकूल है ?

"गृहत्यागी पुरुष राजा आदि विषयी-दर्शन या स्त्री-दर्शन नहीं करेंगे।"

—'साधुवृत्ति', स० तो० ११।१२

७०- गृहत्यागीका अपने ग्राममें वास करना क्या उचित है ?

"संन्यासी अर्थात् गृहत्यागी व्यक्ति कुटुम्ब के सहित अपने ग्राममें वास नहीं करेंगे।"

—'साधुवृत्ति', स० तो ११।१२

७१- गृहत्यागीके लिए क्या स्त्री-संभाषण दूषणीय है ?

"गृहत्यागी निर्वेदप्राप्त वैष्णवोंके लिए स्त्री-संभाषण महान् पतनका कारण है।"

—गौ०स्म०स्त० ६२

७२- दुष्ट गुरुके उपदेशसे जो लोग अप-क्वावस्थामें रागमार्ग अवलम्बन करते हैं, उनकी क्या गति होती है ?

"दुष्ट गुरु लोग रागाधिकार विचार न कर अनेक भारवाही व्यक्ति लोगोंको मंजरी-सेवन एवं सखीभाव-ग्रहणमें उपदेश देकर परमतत्त्वकी अवहेलारूप अपराध करनेके कारण पतित हुए हैं। जो लोग ये सभी उप-देशानुसार उपासना करते हैं, वे लोग भी परमार्थतत्त्वसे क्रमशः दूर टूटते रहते हैं। क्योंकि इन सभीकी आलोचनासे गंभीर राग का लक्षण वे लोग प्राप्त नहीं करते। साधुसंग एवं सदुपदेश द्वारा वे लोग पुनः उद्धार पा सकते हैं।" — कृ०सं० ८।१५

७३- समस्त पापोंका मूल क्या है ?

"दूसरीकी उन्नति सहन न कर पाना ही मात्सर्य है। यही समस्त पापों का मूल कारण है।" —चै०शि० २।५

७४- स्त्री-लाम्पट्य क्या है ?

'स्त्री-लाम्पट्य एक बृहत् पाप है।"

—चै०शि० २।५

७५- प्रतिष्ठा-लाम्पट्यको क्या जानना होगा ?

"प्रतिष्ठा-लाम्पट्यद्वारा मनुष्योंके सभी कार्य नितान्त स्वार्थपर हो पड़ते हैं। अतएव उक्त लाम्पट्यको पाप समझकर दूर करना चाहिए।" —चै० शि० २।५

७६- जागतिक शान्ति या अशान्तिद्वारा उत्तेजित होकर गृहत्याग करना क्या शास्त्रानुमोदित है ?

"बहुतसे व्यक्ति गृहमें कष्ट बोध कर अथवा अन्य कोई उत्पातके कारण गृहस्थ-धर्म परित्याग करते है, वैसा कार्य पाप-कार्य है।"

—चै०शि० २।५

७७- पाप क्या-क्या नामसे परिचित है ?

'गुरुता एवं लघुताके अनुसारसे 'पाप', 'पातक', 'अति-पातक' एवं 'महापातक' आदि भिन्न-भिन्न नाम होते हैं।"—चै०शि०२।५

७८- जाड्य और आलस्य क्या श्लाघनीय हैं ?

"जाड्य या आलस्य पापमें परिगणित हैं, जाड्यशून्य होना पुण्यवानका कर्त्तव्य है।"

—चै०शि० २।५

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

सन्दर्भ-सार

(भक्तिसन्दर्भ-१८)

इस प्रकार अवान्तर (गौण) तात्पर्य विचारसे (उपक्रम-उपसंहारादि तात्पर्य निर्णायक) छः प्रकारके लक्षणोंद्वारा भक्तिका अभिधेयत्व जाना जाता है । उपक्रम एवं उपसंहारके एकत्व निबन्धन भागवतके "जन्माद्यस्य यतः" इत्यादि उपक्रम श्लोकमें 'सत्यं परं धीमहि'—यह भगवद्ध्यानसूचक वाक्य भक्तिके अभिधेयत्व को ही सूचित करता है । श्रीमद्गीतामें भी श्रीकृष्णसे अर्जुन पूछते हैं—'एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते' (१२।१); अर्थात् इस प्रकार सतत-युक्त होकर जो व्यक्ति तुम्हारी उपासना करते हैं एवं जो लोग निर्विशेष ब्रह्मकी उपासना करते हैं, उनमें कौन श्रेष्ठ हैं ? इस प्रश्नके उत्तरमें श्रीकृष्णने ज्ञानमार्गापेक्षा भगवद्ध्यानके ही अनायासत्व अर्थात् सहज-साध्यत्वके कारण भगवद्ध्यानकारी व्यक्तिको ही श्रेष्ठ योगी बतलाया है । "कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा" (भा० १२।१३।१९) श्लोकके उपसंहार वाक्यमें भी परम सत्य पदार्थके ध्यान करनेके ही बात कही गई है ।

"पहले ब्राह्मकल्पादिमें जिन्होंने भागवतरूप अतुलनीय भगवज्ज्ञानप्रदीप ब्रह्माके हृदयमें उद्भासित किया था, उन्हीं विशुद्ध निर्मल अशोकभयामृत परमसत्य 'नारायण' नामक तत्त्वका हम ध्यान करते हैं"—इस उपसंहार पद्यमें भी 'सत्यं परं धीमहि' इस वाक्यमें भक्तिका अभिधेयत्व वर्णित है । षड्विध-तात्पर्यलिंगमें तृतीय लक्षण 'अभ्यास' द्वारा भगवद्भक्तिके ही अभिधेयत्वका उदाहरण दिया गया है । चौथे लक्षण 'अपूर्वता फल' द्वारा भी "अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे" (भा० १।७।७) श्लोकमें व्यास-समाधिमें "भगवान् अधोक्षजके प्रति साक्षाद् भक्तियोग द्वारा ही अनर्थका उपशम होता है" इत्यादि प्रदर्शित हुआ है । पंचम लक्षण प्रशंसात्मक 'अर्थवाद' द्वारा भी भक्तिके अभिधेयत्वके सम्बन्धमें बहुतसे उदाहरण दिखलाये गये हैं । छठवें लक्षण 'उपपत्ति' के द्वारा भी "भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः । तन्मायया तो बुध आभजेत्तं भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा" (भा० ११।२।३७) श्लोकमें भगवद्विमुख जीवका मायाके प्रति अभिनिवेशके कारण भय हुआ करता है । अतएव बुद्धिमान व्यक्ति गुरुदेवको 'परम देवता' एवं 'हरिप्रिय' जानकर अव्यभिचारी भक्तियोग द्वारा सम्यक् प्रकारसे भजन करेंगे—इन सभी उदाहरणों द्वारा भक्तिका ही अभिधेयत्व एवं सर्वसाधन-श्रेष्ठत्व दिखलाया गया है ।

इस स्थलमें 'गतिसामान्यमें' भी अर्थात् सभी क्रियाओंकी जो गति, निष्ठा या प्रवृत्ति है, उसके साथ भक्तिका एक ही उद्देश्य है (भक्तिके अभिधेयत्व विषयमें)। "इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा" (भा० १।५।२२) इत्यादिमें भगवान् हरिका गुणकीर्त्तन ही पुरुषोंकी तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञ, मंत्रोच्चारण, ज्ञान एवं दानका सर्वश्रेष्ठ अच्युत (अमोघ) फल है—ऐसा देखा जाता है।

"धर्म प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां" (भा० १।१।२, श्लोकमें एवं "अत्र सर्गोविसर्गश्च" (भा० २।१०।१) श्लोकमें सर्ग विसर्ग इत्यादि दस लक्षणके भीतर भी सद्धर्मके लक्षणस्वरूप भक्ति ही वर्णित हुई है।

भागवतके बीजस्वरूप चतुःश्लोकीमें भी भक्तिका अभिधेयत्व वर्णित है—"एतावदेव जिज्ञास्यं तत्वजिज्ञासुनात्मनः। अन्वयः व्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा।" आत्माके (श्रीहरिके) तत्व या अपना श्रेयःसाधन तत्व जाननेके इच्छुक व्यक्ति श्रीगुरुचरणोंमें जाकर जो वस्तु अन्वय-व्यतिरेकभावसे या विधि-निषेधद्वारा सर्वत्र-सर्वदा (देशकालादिसे अतीत होकर) वर्त्तमान हैं, उन भगवानकी शुद्ध भक्तिकी बात जिज्ञासा करेंगे। इस चतुःश्लोकीके प्रारम्भमें ही ज्ञान एवं विज्ञान—'सम्बन्ध', रहस्य—'प्रयोजन' और तदङ्ग—अभिधेय साधन भक्ति—इन चारों विषयोंको वक्तव्य रूपसे स्थापन किया गया है। उस चतुःश्लोकीमें ज्ञान, विज्ञान और रहस्य—ये प्रथमोक्त तीन श्लोकोंमें ही व्याख्या किये गये हैं। रहस्य कहनेसे 'प्रेमभक्ति' एवं तदङ्ग कहनेसे साधन भक्तिको जानना होगा; इसके पश्चात् ये सभी पर्याय क्रमसे प्राप्त होनेके कारण "कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेदसंज्ञिता। मयादौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः।" अर्थात् "हे उद्धव! जिसमें मेरा साक्षात् स्वरूपभूत धर्म वर्त्तमान है, वही वेदनाम्नी भगवद्वाणी प्रलयमें विलुप्त हुई थी। पश्चात् ब्राह्म-कल्पके प्रारम्भमें मैंने ब्रह्माको उसका उपदेश दिया।"—उद्धवके प्रति भगवानके इस वाक्यानुसार भी चतुःश्लोकीके अन्तर्गत सर्वशेष चतुर्थ पद्यमें साधन भक्ति ही व्याख्यात हुई है। पूर्वोक्त वाक्यका अन्वय रूपसे उदाहरण—(प्रह्लादजीका दैत्य बालकों को उपदेशमें)—'इस लोकमें मानवमात्रका श्रीकृष्णके प्रति ऐकान्तिक भक्ति एवं सर्वत्र उनकादर्शन ही परम पुरुषार्थ है।" (भा० ७।७।२५) एवं 'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु' (गीता १।२४,१८।६५) अर्थात् 'मेरे प्रति मनको निवेश करो, मेरी पूजा करो, मुझे नमस्कार करो' आदि आदि।

व्यतिरेक रूपसे उदाहरण—

(१) मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह।
चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक्॥
य एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम्।
न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाः पतन्त्यधः॥
(भा० ११।५।२-३)

अर्थात् विराट पुरुषके मुख, बाहु, जांघ एवं चरणसे चारों आश्रमोंके साथ विप्रादि चारों वर्ण पृथक् पृथक् गुणान्वित होकर उत्पन्न हुए हैं। इनमेंसे जो व्यक्ति साक्षात्

आत्मकारणस्वरूप उन परम पुरुष ईश्वरका भजन नहीं करते, परन्तु अवज्ञा करते हैं, वे लोग अपने स्थानसे भ्रष्ट होकर अधःपतित होते हैं।

(२) न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥
(गीता ७।१५)

अर्थात् पापपरायण, नित्यानित्य विवेक-हीन, मायावशीभूत होनेके कारण सच्छास्त्रोपदेशके द्वारा उत्पन्न ज्ञानहीन, दंभादि आसुर भावाश्रित व्यक्ति कदापि मुझे प्राप्त नहीं कर पाते।

(३) यावज्जनो भजति न भुवि विष्णुभक्ति-
वार्त्ता-सुधारसमशेषरसैकसारम्।
तावज्जरामरण-जन्मशताभिघात-
दुःखानि तानि लभते बहुदेवजानि॥
(पद्म-पुराण)

अर्थात् जब तक मानव पृथिवीमें अनन्त रसोंमें एकमात्र सारस्वरूप हरिभक्ति-कथा-रूप सुधारसका सेवन नहीं करते, तब तक वे अनेक देह धारणजनित जरा, मरण, जन्म-यातनादि दुःख प्राप्त होते हैं।

यहाँ यह प्रश्न होता है कि किस किस स्थानमें भक्ति प्रतिपन्न होती है? उसके उत्तरमें कहना होगा कि सर्वत्र ही अर्थात् शास्त्र, कर्त्ता, देश, इन्द्रिय, द्रव्य, क्रिया, कार्य, फल—समस्त क्रियाओंमें ही भक्ति अधिष्ठिता हैं।

सभी शास्त्रोंमें—

संसारेऽस्मिन् महाघोरे जन्ममृत्युसमाकुले।
पूजनं वासुदेवस्य तारकं वादिभिः स्मृतम्॥
(स्कन्द-पुराण)

इस जन्म-मृत्यु समाकुल भयंकर संसारमें वासुदेवकी पूजा ही शास्त्र विचारकों द्वारा एकमात्र परित्राणका उपाय कहा गया है।

अन्वय रूपसे—

भगवान् ब्रह्म कात्स्न्र्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया।
तदध्यवस्यत् कूटस्थो रतिरात्मन् यतो भवेत्॥
(भा० २।२।३४)

ब्रह्माने निर्विकार अर्थात् एकाग्रचित्त होकर तीन बार समग्र वेद विचार करनेके पश्चात् जिससे भगवान्के चरणोंसे रति हो, वैसी साधन-भक्ति निर्द्धारित की थी।

आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेवं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा॥
(स्कन्द, पद्म एवं लिंग पुराण)

सर्वशास्त्र आलोड़न एवं पुनः पुनः विचार कर यही निरूपित हुआ है कि एकमात्र भगवान् नारायण ही सर्वदा ध्येय हैं।

व्यतिरेक रूपसे गरुड़ पुराणमें भी कहा गया है—वेदोंमें पारङ्गत एवं सर्वशास्त्रवित् होकर जो व्यक्ति सर्वेश्वर विष्णुमें भक्तिहीन हैं, उन्हें पुरुषाधम जानना होगा।

सर्वकर्त्ताओंमें—

ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमायां
स्त्री-शूद्र-हूण-शबरा अपि पापजीवाः।

यद्यद्भुत-क्रमपरायणशील शिक्षा-
स्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये ॥
(भा० २।७।४६)

अर्थात् जो व्यक्ति भगवानके नाम-रूप-गुण-लीलामें मनोनिवेश निवेश किये हैं उनकी बात तो क्या, स्त्री, शूद्र हूण, शबर एवं अन्यान्य पापी जीव और पशु-पक्षी आदि तिर्यग् योनिके जीव भी यदि भगवान् अधोक्षजके सेवापरायण भक्तलोगोंके चरित्रका केवल अनुसरण मात्र करे, तब वे भी वैष्णवी मायाको जानकर उत्तीर्ण हो सकते हैं।

कीट-पक्षि-मृगानांच हरौ संन्यस्तचेतसाम् ।
ऊर्द्ध्वमेव गतिं मनो किं पुनर्ज्ञानिनां नृणाम् ॥
(गरुड़-पुराण)

ज्ञानियोंकी बात दूर रहे, श्रीहरिके प्रति सम्यक् रूपसे चित्त निविष्ट होने पर, कीट-पक्षी एवं पशुओंको ऊर्द्ध्वगति प्राप्त होती है।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

अपनी बना लो

—कु० सरोजगुप्ता "गुप्तेश"

हे मेरे परमधन ! दयादृष्टिसे इधर देखकर
अब तो मुझे अपनी बना लो ।
दयामय दयासिन्धु दयादान देकर
मुझे नाथ अपनी सेवामें लगा लो ॥

मुझे मोह ममता से जग की बचाकर
अहो प्रेमधन ! अपनी प्रेमिन बना लो ।
विषयकी सकल वासनाओंको हरकर
निकालो हृदयसे यह अज्ञान का तम ।
वह ज्योति जरा अपनी जगमग जगाकर
यह जीवन मेरा नाथ अपना बना लो ॥

सुनाकर मधुरतान मुरलीकी मोहन
मुझे नाथ चरणोंकी दासी बना लो ।
कृपामय करो अबतो इतनी ही करुणा
सदा चित्त रमता रहे आप ही में ॥

जहाँ मैं सदा लूँ नटवर नाम तेरा
तो टूटे उसी क्षण जगका नाता मेरा ।
इसीलिये भगवन् यही आरजू है
जगत जालसे स्वामि जल्दी छुड़ा लो ।
मुझे मोह ममतासे जगकी बचाकर
अहो प्रेमधन अपनी प्रेमिन बना लो ॥ ★

परम भागवत राजा अम्बरीष

वेदवेत्ता, सत्यप्रतिज्ञ, श्रेयस्कामी महापुरुष नाभागको भगवान् रुद्रने ब्रह्म-तत्त्वका ज्ञान प्रदान किया था। उन्हींको परम सौभाग्यसे अम्बरीष पुत्ररत्न रूपसे प्राप्त हुए। पिताकी महानता पुत्रमें अक्षरशः एवं पूर्ण रूपसे प्रतिफलित थी। बचपनसे ही अम्बरीषने भक्ति करते-करते भगवान् कृष्ण को अपनी भक्तिसे वशीभूत कर लिया था। उनकी रक्षाके लिए भगवान्ने सुदर्शन चक्रको उनके यहां नियुक्त कर दिया था। इसका परिणाम यही था कि दुर्वासा मुनिके क्रोधसे प्रकटित कृत्या भस्मीभूत हो गयी एवं अच्छेद्य ब्रह्मशाप भी राजाका स्पर्श न कर सका।

वे ऐसे भाग्यवान एवं सुखी थे कि हम जैसे तुच्छ जीव उसकी कल्पना तक नहीं कर सकते। उन परम भक्त राजाको सम्पूर्ण सुख और वैभव प्राप्त थे—ऐसा कहना कोई अत्युक्ति न होगी। उन्हें पृथ्वीके सातों द्वीपोंका आधिपत्य, अतुलित कुबेर की-सी सम्पत्ति, लोकोत्तर ऐश्वर्य आदि सहज प्राप्त थे। किन्तु उसे वे स्वप्न की तरह साररहित एवं नगण्य मानते थे।

धन-वैभव-तृष्णाके अभिभूत होकर मनुष्य नेत्रयुक्त होनेपर भी अन्धा बन जाता है, उचित-अनुचितका विचार न कर पापकर्ममें प्रवृत्त होता है, हिंसा करता है, कपट व्यवहार करता है एवं अन्तमें घोर नरकमें पतित होता है। जो संसारके वैभव-अधिकार चार दिन की ज्योत्स्नाके तुल्य हैं और अस्थायी हैं उनपर वह इतना भूल जाता है कि निरपराध असंख्य प्राणियोंको मारकर अपनेको महान् सिद्ध करनेका प्रयास करता है। इसका उन्हें (अम्बरीषको) अनुभव हो गया था कि यह जीवन-दीपक सदा ही प्रज्वलित न रहेगा। एक दिन अवश्य ही बुझ जायगा। अतः उन्होंने अपने अमूल्य जीवनको श्रीकृष्ण-प्रीतिके उद्देश्यसे न्यौछावर कर दिया था।

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयो
र्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु
श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये॥
मुकुन्दलिङ्गालयदर्शने दृशौ
तद्भृत्यगात्रस्पर्शेऽङ्गसंगमम्।
घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे
श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते॥
(भा० ९।४।१८-१९)

उन्होंने अपने मनको श्रीकृष्णके चरणारविन्दयुगलमें, वाणीको भगवद् गुण-वर्णनमें, करों (हाथों) को श्रीहरिके मन्दिर मार्जनमें एवं अपने कानोंको भगवान् अच्युतकी मंगलमयी कथाके श्रवणमें लगा रखा था।

उन्होंने अपने नेत्रोंको भगवान् मुकुन्दके श्रीमूर्त्ति एवं मन्दिरोंके दर्शनोंके लिए, अंग-संग भगवद् भक्तोंके शरीर-स्पर्शके लिए, नासिकाको हरिके चरणकमलोंमें चढ़ी हुई श्रीतुलसीके दिव्य-गन्ध ग्रहणके लिए एवं जिह्वाको भगवान्के प्रति अर्पित नैवेद्य प्रसाद के लिए अर्पण कर दिया था।

पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे
शिरो हृषीकेशपदाभिवन्दने ।
कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया
यथोत्तमश्लोकजनाश्रया रतिः ॥
एवं सदा कर्मकलापमात्मनः
परेऽधियज्ञे भगवत्यधोक्षजे ।
सर्वात्मभावं विदधन्महीमिमां
तन्निष्ठविप्राभिहितः शशास हे ॥
(भा० ९।४।२०-२१)

उन्होंने अपने चरणोंको भगवानके पावन क्षेत्रोंकी पद-यात्रा करनेमें लगा दिया था, मस्तकको भगवान् श्रीकृष्णकी चरणकमलोंकी वन्दनामें समर्पित कर अपनेको धन्य मानते थे। उन्होंने उत्तम माला, चन्दन आदि भोग-सामग्रीको भगवान्‌की सेवामें अर्पण कर दिया था। स्वयं भोगेच्छा-रहित होकर पवित्रकीर्त्ति भगवान्‌के निजजनोंसे कृष्ण-प्रेम प्राप्त करनेके इच्छुक रहते थे, क्योंकि भगवत्प्रेमका निवास भक्तजनोंमें ही रहता है।

सर्वात्मा, सर्वस्वरूप जानकर यज्ञपुरुष इन्द्रियातीत भगवान्‌को उन्होंने सारे कर्म समर्पित कर दिये थे और वे भगवद्भक्त ब्राह्मणोंकी आज्ञाके अनुसार पृथ्वीका शासन करते थे। उन्होंने अनेक यज्ञोंके द्वारा-यज्ञपति भगवान्‌की आराधना की थी। उनके यज्ञोंमें देवताओंके साथ बैठे ऋत्विक् भी उनके समान दीख पड़ते थे।

स्वर्गो न प्रार्थितो यस्य मनुजैरमरप्रियः ।
शृण्वद्भिरुपगायद्भिरुत्तमश्लोकचेष्टितम् ॥
(भा० ९।४।२४)

उनकी प्रजा महात्माओंके द्वारा गाये हुए भगवान् श्रीकृष्णके उत्तम चरित्रका किसी समय बड़े प्रेमसे श्रवण करती और किसी समय उनका गान करती। इस प्रकार उनके राज्यके मनुष्य देवताओंके अत्यन्त प्यारे स्वर्गकी भी इच्छा नहीं करते थे। वे अपने हृदयमें नित्य निरन्तर भगवान्‌के दर्शन करते थे एवं आत्मानन्दमें इतने सन्तुष्ट थे कि उन्हें विषय सभी अत्यन्त अप्रीतिकर जान पड़ते थे। अम्बरीष भक्तियोग एवं प्रजापालन रूप स्वधर्मके द्वारा भगवान्‌को प्रसन्न करने लगे एवं सभी प्रकारकी आसक्तियोंसे निर्मुक्त हो चुके थे।

गृहेषु दारेषु सुतेषु बन्धुषु
द्विपोत्तमस्यन्दनवाजिपत्तिषु ।
अक्षय्यरत्नाभरणायुधादि-
ष्वनन्तकोशेष्वकरोदसन्मतिम् ॥
(भा० ९ । ४ । २७)

घर, स्त्री, पुत्र, भाई-बन्धु, बड़े-बड़े हाथी, रथ, घोड़े एवं पदातियोंकी चतुरङ्गिनी सेना, अक्षय रत्न-भूषण और आयुध आदि समस्त वस्तुओं तथा कभी समाप्त न होनेवाले कोषोंके सम्बन्धमें उनका ऐसा दृढ़ निश्चय था कि वे सबके सब असत्य हैं।

तस्मा अदाद्धरिश्चक्रं प्रत्यनीकभयावहम् ।
एकान्तभक्तिभावेन प्रीतो भृत्याभिरक्षणम् ॥
(भा० ९।४।२)

उनकी अनन्य प्रेममयी भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान् श्रीहरिने उनकी रक्षाके लिए सुदर्शन चक्रको नियुक्त कर दिया था जो विरोधियोंको भयभीत करनेवाला एवं भगवद्भक्तोंकी रक्षा करनेवाला है।

आरिराधयिषुः कृष्णं महिष्या-तुल्यशीलया ।
युक्तः सांवत्सरं वीरो दधार द्वादशीव्रतम् ॥
(भा० ९ । ४ । २९)

राजा अम्बरीषकी पत्नी भी उन्हींके समान धर्मशीला, संसारसे विरक्त एवं भक्तिपरायणा थीं। एक बार अम्बरीष महाराजने अपनी पत्नीके साथ भगवान् श्रीकृष्ण की आराधनाके लिए एक वर्ष तक द्वादशीप्रधान एकादशी-व्रत करनेका नियम ग्रहण किया।

व्रतकी समाप्ति होने पर कार्त्तिक मासमें उन्होंने तीन रातका उपवास किया और एक दिन यमुनाजीमें स्नान कर मधुवनमें भगवान श्रीकृष्णकी पूजा की।

महाभिषेकविधिना सर्वोपस्करसम्पदा।
अभिषिच्याम्बराकल्पैर्गन्धमाल्यार्हणादिभिः॥
तद्गतान्तरभावेन पूजयामास केशवम्।
ब्राह्मणांश्च महाभागान् सिद्धार्थानपि भक्तितः॥
(भा० ९।४।३१-३२)

महाराज अम्बरीषने महाभिषेककी विधि से सब प्रकारकी सामग्री और सम्पत्तिद्वारा भगवान्का अभिषेक किया, हृदयसे तन्मय होकर वस्त्र-आभूषण, चन्दन-माला एवं अर्घ्य आदिके द्वारा उनका पूजन किया। यद्यपि महाभाग्यवान ब्राह्मणोंको इस पूजाकी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि वे सब पूर्णकाम एवं सिद्ध थे, फिर भी भक्तिभावसे राजा अम्बरीषने उनका पूजा किया। उन्होंने ब्राह्मणोंको स्वादिष्ट एवं उत्तम गुणकारी भोजन कराया। पश्चात् सुवर्णसे मण्डित सींग एवं चाँदीसे मढ़े हुए खुरयुक्त, सुन्दर-सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित, छोटी अवस्थावाली, देखनेमें सुन्दर, बछड़ेवाली एवं अतिशय दूध देनेवाली करोड़ों गौओंको उन ब्राह्मणोंके घर भिजवा दिया।

राजा जब ब्राह्मणोंका सत्कार कर चुके, तब उन्होंने आज्ञा लेकर व्रतके धारण करनेकी तैयारी की। उसी समय शाप और वरदान देनेमें समर्थ स्वयं दुर्वासाजी भी उनके यहाँ अतिथि रूपसे पधारे। राजा अम्बरीष उन्हें देखते ही खड़े हो गये। आसन देकर बैठाया, विविध सामग्रियोंसे अतिथिके रूपमें आये हुए दुर्वासाजी की पूजा कर उनके चरणोंमें प्रणाम कर उनसे भोजनकी प्रार्थना की।

राजा की प्रार्थना दुर्वासाजीने स्वीकार कर ली। वे आवश्यक कर्मोंसे निवृत्त होनेके लिए नदी तट पर चले गये और ब्रह्मका ध्यान करते हुए यमुनाके पवित्र जलमें स्नान करने लगे।

इधर द्वादशी घड़ी भर शेष रह गई थी। इससे राजा अम्बरीष धर्म-संकटमें पड़ गये एवं पारणके सम्बन्धमें ब्राह्मणोंसे परामर्श क्योंकि ब्राह्मणको बिना भोजन कराये स्वयं भोजन कर लेना और द्वादशी रहते पारण न करना—दोनों ही दोषपूर्ण हैं। तब उन्होंने ब्राह्मणोंसे विचार कर कहा—हे ब्राह्मणों! यदि आज्ञा आप लोग दें, तो जिससे पाप न लगें और मेरी भी भलाई हो, अतः श्रुतियोंके मतानुसार मैं चरणामृतमात्र ग्रहण कर पारण कर लेता हूँ। क्योंकि जल बिना भोजन करना भी है और नहीं करना भी है।

ऐसा निश्चय कर मन ही मन भगवान्का ध्यान कर राजर्षि अम्बरीषने जल पी लिया और दुर्वासाजीके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। दुर्वासाजी आवश्यक कर्मोंसे निवृत्त होकर यमुना पुलिनसे लौट आये। जब राजाने आगे बढ़कर उनका अभिनन्दन किया, तब उन्होंने अनुमानसे समझ लिया कि राजाने पारण कर लिया है। उस समय दुर्वासाजी

बहुत भूखे थे। वे क्रोधसे थर-थर काँपने लगे। भौंहोंके चढ़ जानेसे उनका मुख विकृत हो गया। वे हाथ जोड़कर खड़े अम्बरीषको डाँटकर कहने लगे—

तुम अत्यधिक क्रूर हो एवं धनके मदमें मतवाले बन गये हो। अपनेको सर्वसमर्थ मानते हो। भगवान्‌की भक्ति तुममें लेशमात्र भी नहीं है। इसीसे धर्मका उल्लंघन कर मेरे प्रति तुमने बड़ा अन्याय किया है, जो मुझ आये हुए अतिथिका निमन्त्रण कर तुमने मुझे भोजन कराये बिना ही पारण कर लिया है। अब देखो, तुम्हें इसका फल चखाता हूँ। ऐसा कहते हुए क्रोधसे प्रदीप्त हो उठे और अपने सिरकी जटाको उखाड़कर राजाको मारनेके लिए कृत्या उत्पन्न की। वह प्रलयकालीन अग्निकी भाँति हाथमें तलवार लेकर राजा पर टूट पड़ी। राजा अम्बरीष शान्त भावसे खड़े रहे एवं तनिक भी विचलित न हुए।

उस समय भक्तकी रक्षाके लिए जो सुदर्शन चक्र वहाँ नियुक्त था, वह आगे बढ़ा और उसने सर्वप्रथम कृत्याको जलाकर खाक कर दिया और फिर दुर्वासाजीकी ओर चल पड़ा। दुर्वासाजी भयभीत होकर अपने प्राणों को बचानेके लिए भाग निकले। परन्तु उन्होंने देखा कि मेरे पीछे ऊँची-ऊँची लपटों वाला दावानल साँपके पीछा करनेकी तरह सुदर्शन चक्र दौड़ता चला आ रहा है। वे सुमेरुपर्वतकी गुफामें प्रवेश करनेके लिए आगे बढ़े। वहाँ भी उन्होंने बचनेका उपाय नहीं देखा।

दिशो नभः क्ष्मां विवरान् समुद्रां-
ल्लोकान् सपालांस्त्रिदिवं गतः सः।
यतो यतो धावति तत्र तत्र
सुदर्शनं दुष्प्रसरं ददर्श॥
(भा० ९।४।५१)

दुर्वासाजी दिशाएँ, आकाश पृथ्वी, अतल-वितल आदि नीचेके लोक, समुद्र, लोकपाल और उनके द्वारा सुरक्षित लोक एवं स्वर्ग तकमें गये। परन्तु जहाँ-जहाँ वे गये, वहीं-वहीं उन्होंने असह्य तेजवाले सुदर्शन चक्रको अपने पीछे लगा देखा।

जब उन्हें कोई भी रक्षक न मिला, तब वे अधिक डरकर त्राण पानेके लिए देव-शिरोमणि ब्रह्माजीके पास गये और बोले—हे स्वयंभू! आप कृपा कर भगवान्‌के तेजोमय चक्रसे मेरी रक्षा कीजिए।

तब ब्रह्माजीने कहा—

अहं भवो दक्षभृगुप्रधानाः
प्रजेशभूतेशसुरेशमुख्याः।
सर्वे वयं यन्नियमं प्रपन्ना
मूर्ध्न्यर्पितं लोकहितं वहामः॥
(भा० ९।४।५४)

हे दुर्वासा! शंकर, मैं, दक्ष, भृगु आदि प्रजापति, भूतेश्वर, देवेश्वर आदि सब जिनके बनाये नियमोंमें बँधे हैं एवं जिनकी आज्ञा शिरोधार्य करके हम लोग संसारका हित करते हैं, उनके भक्तके द्रोहीको बचानेके लिए हम समर्थ नहीं हैं।

विधाताका कोरा उत्तर सुनकर दुर्वासाजी भगवान् शंकरकी शरणमें कैलाशमें जा पहुँचे। व्यग्रतासे युक्त दुर्वासाजीको आया देख भगवान् शंकर दुर्वासाजीकी स्थितिका अवलोकन करते हुए कहने लगे—

अहं सनत्कुमारश्च नारदो भगवानजः ।
कपिलोऽपान्तरतमो देवलो धर्म आसुरिः ॥
मरीचि प्रमुखाश्चान्ये सिद्धेशाः पारदर्शनाः ।
विदाम न वयं सर्वे यन्मायां मायया ऽऽवृताः ॥
तस्य विश्वेश्वरस्येदं शस्त्रं दुर्विषहं हि नः ।
तमेव शरणं याहि हरिस्ते शं विधास्यति ॥

(भा० ६।४।५७-५९)

मैं, सनत्कुमार, नारद, भगवान् ब्रह्मा, कपिलदेव, अपान्तरतमा, देवल, धर्म, आसुरी तथा मरीचि आदि दूसरे सर्वज्ञ सिद्धेश्वर—ये हम सभी भगवान्‌की मायाको नहीं जान सकते। क्योंकि हम उसकी मायाके घेरेमें हैं। यह शस्त्र उन विश्वेश्वरका शस्त्र है। यह हम लोगोंके लिए असह्य है। तुम उन्हींके शरणमें जाओ। वे भगवान् ही तुम्हारा मंगल करेंगे।

वहाँसे निराश होकर दुर्वासाजी भगवान नारायणके परमधाम वैकुण्ठ गये जहाँ लक्ष्मीपतिके रूपमें वे लक्ष्मीजीके साथ निवास करते हैं। दुर्वासाजी चक्रकी आगसे जल रहे थे। वे काँपते हुए भगवानके चरणोंमें गिर पड़े एव प्रार्थना करने लगे—हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे विश्वके जीवनदाता ! मैं अपराधी हूँ, मेरी आप रक्षा कीजिए। मैंने आपका परम प्रभाव न जानकर ही आपके प्यारे भक्तके चरणोंमें अपराध किया है। प्रभो ! आप मुझे बचाइए। आपके परम पावन नामका उच्चारण कर नारकी जीव भी मुक्त हो जाता है।

दुर्वासाजीके ऐसे कहकर शरणागत होने पर मन्दहास्य करते हुए भक्तरक्षक भगवान नारायण कहने लगे—इस विषयमें मैं क्या कर सकता हूँ ?

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥
नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना ।
श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा ॥

(भा० ६।४।६३,६४)

दुर्वासाजी ! मैं भक्तोंके सर्वथा अधीन हूँ। मुझे तनिक भी स्वतन्त्रता नहीं है। मेरे सीधेसादे सरल भक्तोंने मेरे हृदयको अपने वशमें कर रक्खा है। भक्तजन मुझसे प्यार करते हैं एवं मैं उनसे। ब्रह्मन् अपने भक्तोंका एकमात्र आश्रय मैं ही हूँ। इसलिए साधु-स्वभाववाले भक्तोंको छोड़कर मैं न तो आपको चाहता हूँ और न अपनी अर्द्धाङ्गिनी अविनाशिनी लक्ष्मीजी को ही।

ये दारागार पुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् ।
हित्वा मा शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥
मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः ।
वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ॥

(भा० ६।४।६५-६६)

जो भक्त स्त्री, पुत्र, गृह, गुरुजन, प्राणधन, इहलोक एवं परलोक सबकुछ छोड़कर केवल मेरी शरणमें आ गये हैं, उन्हें छोड़नेका मैं संकल्प कैसे कर सकता हूँ ?

जैसे सती स्त्री अपने पातिव्रत्यसे सदाचारी पतिको वशमें कर लेती है, वैसे ही मेरे साथ अपने हृदयको प्रेमबन्धनसे बाँध रखनेवाले समदर्शी साधु भक्तिके द्वारा मुझे अपने वशमें कर लेते हैं। मेरे अनन्य प्रेमी भक्त मेरी सेवासे ही अपनेको परिपूर्ण एवं कृतकृत्य मानते हैं। सेवाके फलस्वरूप प्राप्त हुई सालोक्यादि मुक्तियोंको नहीं चाहते। फिर

कालक्रमसे नष्ट हो जानेवाली वस्तुओंकी तो बात ही क्या है ?

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥

(भा० ९।४।६८)

विशेष और क्या कहा जाय, प्रेमी भक्त मेरे हृदय हैं और मैं उन भक्तोंका हृदय हूँ। वे मेरे अतिरिक्त कुछ नहीं जानते और मैं उनके अतिरिक्त और कुछ नहीं जानता ।

दुर्वासाजी अब तो एक ही उपाय है कि जिस साधु भक्तके अनिष्ट करनेसे आपको विपत्तिमें पड़ना पड़ा है, आप उन्हींके पास जाइए । निरपराध साधुओंके अनिष्टकी चेष्टासे अनिष्ट करनेवालेका ही अमंल होता है ।

इसमें सन्देह नहीं कि विद्या एवं तपस्या ब्राह्मणोंके लिए परम कल्याणके साधन हैं। किन्तु यदि ब्राह्मण उद्दण्ड एवं अन्यायी हो जाय, तो वे दोनों उलटा फल देते हैं । आपका कल्याण हो । आप नाभागनन्दन परम भाग्यशाली राजा अम्बरीषके पास जाइए एवं उनसे क्षमा माँगिये । इसी उपायसे आपको शान्ति मिलेगी ।

दुर्वासाजी चक्रतापसे सन्तापित थे ही, उन्हें भगवान्‌से भी रक्षा नहीं मिली । ऐसी परिस्थितिमें वे राजा अम्बरीषके पास जा पहुँचे । वे अत्यन्त दुःखी होकर राजाके पैर पकड़ लिये । राजाने जब दुर्वासाजीकी यह चेष्टा देखी, तो वे उनके चरण पकड़नेसे लज्जित होकर राजा अम्बरीष भगवान्‌के चक्र श्रीसुदर्शनजीकी स्तुति करने लगे । उस समय उनका हृदय दयावश अत्यन्त पीड़ित हो रहा था ।

त्वमग्निर्भगवान् सूर्यस्त्वं
सोमो ज्योतिषां पतिः ।
त्वमापस्त्वं क्षितिर्व्योम
वायुर्मात्रेन्द्रियाणि च ॥
सुदर्शन नमस्तुभ्यं सहस्राराच्युतप्रिय ।
सर्वास्त्रघातिन् विप्राय स्वस्ति भूयो इडस्पते ॥
त्वं धर्मस्त्वमृतं सत्यं त्वं यज्ञोऽखिलयज्ञभुक् ।
त्वं लोकपालः सर्वात्मा त्वं तेजः पौरुषं परम् ॥

(भा० ९।५।३-५)

अम्बरीष महाराजने कहा—हे प्रभो ! हे सुदर्शन ! आप अग्निस्वरूप हैं । आप ही परम समर्थ सूर्य हैं। समस्त नक्षत्रमण्डलके अधिपति चन्द्रमा भी आपके स्वरूप हैं। जल, पृथ्वी, आकाश, वायु, पंच तन्मात्रा और सम्पूर्ण इन्द्रियोंके तेजमें भी आप ही हैं। भगवान्‌के प्रिय हे हजारों अरोंवाले चक्रदेव ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । समस्त अस्त्र-शस्त्रोंको नष्ट कर देनेवाले एवं पृथ्वीके रक्षक ! आप इन ब्राह्मण की रक्षा कीजिए । आप ही धर्म हैं, आप ही अमृत एवं परम सत्य हैं । आप ही समस्त यज्ञोंके अधिपति एवं स्वयं यज्ञ भी हैं । आप समस्त लोकोंके रक्षक एवं सर्वलोकस्वरूप हैं । आप परमपुरुष परमात्माके श्रेष्ठ तेज एवं पौरुष स्वरूप हैं ।

समस्त धर्मोंकी मर्यादाके रक्षक, अधर्माचारी असुरोंको भस्म करनेमें अग्निस्वरूप, तीनों लोकोंके रक्षक, विशुद्ध तेजोमय,

मनोगति सम्पन्न एवं अद्भुतकर्मा आपको प्रणाम है। आपके धर्ममय तेजसे अन्धकार का नाश होता है, सूर्यादि तेजोमय महापुरुषों-के प्रकाशकी रक्षा होती है। आपकी महिमा अपार है। भेदभावरहित कार्य-कारणात्मक संसार आपका ही स्वरूप है। आप अजेय हैं। निरञ्जन विष्णु दैत्य-दानवोंकी सेनामें प्रवेश कर आपके द्वारा जब उनके अंगोंको काटते हैं, तो उस समय आपकी अपूर्व शोभा देखी जाती है।

स त्वं जगत्त्राण खलप्रहाणये
निरूपितः सर्वसहो गदाभृता।
विप्रस्त चास्मत्कुलदैवहेतवे
विधेहि भद्रं त्वदनुग्रहो हि नः॥
यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः।
कुलं नो विप्रदैवं चेद् द्विजो भवत विज्वरः॥
यदि नो भगवान् प्रीत एकः सर्वगुणाश्रयः।
सर्वभूतात्मभावेन द्विजो भवतु विज्वरः॥

(भा० ९।५।९-११)

हे विश्वके रक्षक! आप रणभूमिमें सबका प्रहार सह लेते हैं। आपका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। गदाधारी भगवान्‌ने दुष्टोंके नाशके लिए ही आपको नियुक्त किया है। आप कृपा कर हमारे कुलके भाग्योदयके लिए दुर्वासाजीका कल्याण कीजिए। हम पर आपका यह महान अनुग्रह होगा।

यदि मैंने कुछ दान किया हो या यज्ञ किया हो, यदि हमारे वंशके लोग ब्राह्मणोंको ही अपना आराध्यदेव समझते रहे हों, तो दुर्वासाजीका जलन मिट जाय।

भगवान् समस्त गुणोंके एकमात्र आश्रय हैं। यदि मैंने समस्त प्राणियोंके आत्माके रूपमें उन्हें देखा हो, तो वे मुझपर प्रसन्न हों एवं दुर्वासाजीका जलन शान्त हो जाय।

इस प्रकार प्रणत होकर राजा अम्बरीषने सुदर्शन चक्रकी स्तुति की। उनकी प्रार्थनासे चक्र शान्त हो गया। दुर्वासाजी चक्रकी अग्निसे मुक्त हो गये एवं उनका चित्त स्वथ्य हो गया। तब वे राजा अम्बरीषको अनेकानेक उत्तम आशीर्वाद देते हुए उनका प्रशंसा करते हुए कहने लगे—

अहो अनन्तदासानां महत्वं दृष्टमद्य मे।
कृतागसोऽपि यद् राजन् मंगलानि समीहसे॥
दुष्करः को नु साधूनां दुस्त्यजो वा महात्मनाम्।
यैः संगृहीतो भगवान् सात्वतामृषभो हरिः॥
यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान् भवति निर्मलः।
तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते॥

(भा० ९।५।१४-१३)

धन्य है! आज मैंने भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंका महत्व देखा। राजन्! मैंने आपका अपराध किया तो भी आप मेरे लिए मङ्गल-की ही कामना कर रहे हैं।

जिन्होंने भक्तवत्सल भगवान् श्रीहरिके चरणकमलोंको दृढ़भावसे एवं प्रेमपूर्वक पकड़ लिया है, उन साधु पुरुषोंके लिए कौनसा कार्य कठिन है? जिनका हृदय उदार है, वे महात्मा भला किस वस्तु का परित्याग नहीं कर सकते?

जिनके मङ्गलमय नामोंके श्रवणमात्रसे जीव निर्मल हो जाता है, उन्हीं तीर्थपाद

भगवान्‌के चरणकमलोंके जो दास हैं, उनके लिए कौनसा कार्य अवशेष रह जाता है ?

महाराज अम्बरीष ! आपका हृदय करुणासे पूर्ण है। आपने मेरे ऊपर महान् अनुग्रह किया है। अहो ! आपने मेरे अपराधोंको भुलाकर मेरे प्राणोंकी रक्षा की है।

जबसे दुर्वासाजी चक्रके तापसे भागे थे, तबसे अब तक राजा अम्बरीषने भोजन नहीं किया था। वे उनके लौटने की बाट देख रहे थे। अब उन्होंने दुर्वासाजीके चरण पकड़ लिये एवं उन्हें प्रसन्न करके आदर सत्कार-पूर्वक भोजन कराया। विविध प्रकारकी भोजन-सामग्रीसे भोजन कर दुर्वासाजी जब तृप्त हो गये, तब उन्होंने बड़े आदरसे राजा अम्बरीषसे कहा—राजन् ! आप भी अब भोजन करें।

प्रीतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि तव भागवतस्य वै।
दर्शनस्पर्शनालापैरातिथ्येनात्ममेधसा ॥
(भा० ९।५।२०)

अम्बरीष ! आप भगवान्‌के परमप्रेमी भक्त हैं। आपके दर्शन, स्पर्शन बातचीत एवं मनको भगवान्‌की ओर प्रवृत्त करानेवाले आतिथ्यसे मैं अत्यन्त प्रसन्न एवं अनुग्रहीत हुआ हूँ।

स्वर्गकी देवाङ्गनाएँ एवं पृथ्वीके समस्त जन भी आपकी पुण्यमयी कीर्त्तिका बारम्बार कीर्त्तन करते रहेंगे।

इसप्रकार अत्यन्त प्रसन्न होकर अम्बरीषके गुणोंकी प्रशंसा करते हुए राजासे अनुमति लेकर दुर्वासाजीने ब्रह्मलोकके लिए प्रस्थान किया। जब सुदर्शन चक्रसे डरकर दुर्वासाजी भगे थे, तबसे लेकर उनके लौटने तक एक वर्षका समय बीत गया। इतने दिनोंतक राजा अम्बरीष उनके दर्शनकी आकांक्षासे केवल जल पीकर रहे थे। दुर्वासाजीके चले जानेपर उनके भोजनसे बचे हुए अत्यन्त पवित्र अन्नका उन्होंने भोजन किया। अपने कारण दुर्वासाजी का दुःखमें पड़ना और अपनी प्रार्थनासे उनका छूटना इन दोनों बातोंको अपनेद्वारा होनेपर भी भगवान्‌की ही महिमा समझा। राजा अम्बरीषमें ऐसे-ऐसे अनेकों गुण थे। अपने समस्त कर्मोंके द्वारा वे परब्रह्म परमात्मा श्रीभगवान्‌में भक्तिभावकी अभिवृद्धि करते रहते थे। उस भक्तिके प्रभावसे उन्होंने ब्रह्मलोक तकके समस्त भोगोंको नरकके समान समझते थे। तदनन्तर वे अपने ही समान भक्त पुत्रोंपर राज्यका भार छोड़ कर स्वयं वन चले गये। वहां वे बड़ी धीरताके साथ आत्मस्वरूप भगवान्‌में अपना मन लगाकर गुणोंके प्रवाहरूप संसारसे मुक्त हो गये।

—वागरोदी श्रीकृष्णचन्द्रजी शास्त्री,
साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ।

तृतीय विरह-तिथिके उपलक्ष्यमें—

परमाराध्य पतितपावन श्रील गुरुजीके

चरणारविन्दोमें

पुष्पांजलि

जय केशव ! कलकीर्ति पुंजके अतुल सुधाकर।
अमित ज्ञान-प्रज्ञान-महोदधि बुद्धि विभाकर॥
शुद्ध ज्योतिमय रूप सदा सुन्दर अविकारी।
जगती तल पै प्रगट भये तुम मंगलकारी॥

प्रगट होय अज्ञान तिमिरकौ पुंज विनास्यौ।
अहो दिवाकर स्वजन चित्तकौ कमल विकास्यौ॥
भक्ति-भावना-पूर्ण स्वच्छ अनुराग विलास्यौ।
अद्‌भुत राधा-कृष्ण तत्वकौ मरम प्रकास्यौ॥

जद्यपि हमसौं विलग भये हौ करुणा सागर।
छाँड़ि गए उपदेस प्रेरणा भर्‌यौ उजागर॥
हम जीवन कौं एकमात्र आधार वही है।
करै जीव हरिभक्ति आपने सही कही है॥

हरिलीला रसमत्त रुचिर रसिकनकी रति है।
रसिक स्यामके बिना जीवकी कहूँ न गति है॥
असरण-सरण-सरूप ! तिहारी ये ही सिच्छा।
निस्चय ही करि रहो हमारी पूरण इच्छा॥

—श्रीगुरुकृपालेशप्रार्थी
दीनहीन सेवक
ओमप्रकाश दासाधिकारी
बी० ए०, साहित्यरत्न
जयपुर (राज०)

मेरे दुर्दैवकी बात

औदार्य-लीला-प्रकट करनेवाले स्वभजन-विभजन-प्रयोजनावतार स्वयं भगवान् श्री-श्रीगौरचन्द्र मेरी तरह कोटि अनर्थयुक्त दुर्मति जीवके प्रति अत्यन्त करुणामय होकर इस प्रपंचमें अपने पार्षद एवं अपने धामके साथ प्रकट हुए थे एवं मुझ जैसे बहिर्मुख जीवको अनर्थोंसे निर्मुक्त कर सर्वश्रेष्ठ अर्थ प्रदान करनेके लिए उनके निजजन किसी एक आदर्श महाजनको मेरे निकट प्रेरण कर दिया है। यद्यपि मैं श्रीश्रीगौरचन्द्रकी प्रकटलीलाके समय मनुष्य जन्म प्राप्त न कर सका, तथापि त्रिकालसत्य महावदान्य श्रीश्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेवने वर्त्तमान कालमें भी अपनी महा-वदान्यताको विस्तार करनेमें कोई संकोच प्रकाश नहीं किया है। अतएव उन्होंने उन्हींके अभिन्न प्रकाश-विग्रह पतितपावन किसी महाजनको भेज दिया है। मेरे सौभाग्यकी कोई सीमा नहीं है। मैंने भुवनैकवन्द्य जगद्-गुरुके पदतलमें बैठनेका सुयोग पाया है। बहुत सुकृतिद्वारा इस सुवर्ण सुयोगको पाकर भी इसका सदुपयोग न कर सका। मैं स्वतन्त्र जीव हूँ, करुणामय भगवान्ने कृपा कर मुझे जो स्वतन्त्रतारूपी दिव्य मणि प्रदान की है, आज मैं उसीका अपव्यवहार करनेके लिए उद्यत हूँ। उन्होंने मुझे जो अधिकार दिया है, उस अधिकारसे उन्नत अधिकारमें प्रवेश करनेके विषयमें सम्पूर्ण रूपसे उदासीन हूँ। किसी सत् पुत्रको स्नेहमय पिता कुछ अर्थ प्रदान करने पर वह अपने अर्थका सद्व्यवहार कर क्रमशः विपुल धन का अधिकारी बनकर पिताकी निष्कपट प्रीतिका पात्र बन सकता है। किन्तु असत् पुत्र प्राप्त अर्थ का सद्व्यवहार करनेके बदले असद्व्यवहार कर अधिक धन पाना तो दूर रहे, शीघ्र ही पिताका अवि-श्वास-पात्र होकर प्राप्त-अधिकारसे भी वंचित हो जाता है। मेरी भी यही अवस्था है। श्रील गुरुदेवने मेरी वर्त्तमान योग्यताके अनुसार जो अधिकार दिया है, उसके प्रति भी मैं उदासीन हो पड़ा हूँ। कभी-कभी इस अधिकार को पाकर ही अपनेको परितृप्त मानने लगता हूँ। यह जड़ीय परितृप्ति ही मेरे हरिभजनमें प्रधान बाधास्वरूपसे विद्य-मान है। मैं श्रीश्रीमन्महाप्रभुके मनोऽभिष्ट-पूरणकारी श्रील गुरुदेव एवं विप्रलम्भ-लीलामय विग्रह श्रीश्रीगौरसुन्दरका लीला-रहस्य समझनेमें असमर्थ हो रहा हूँ। श्रीगुरु-गौरांगकी अभूतपूर्वा कृष्णान्वेषण-लीला मेरे विचारके विषयीभूत नहीं हो रही है। कभी तो मैं एक उच्च आसन एवं प्रतिष्ठा पाकर ही अपनेको तृप्त मानने लगता हूँ, कभी तो मैं प्रसाद-सेवनकी छलनासे उत्तम खाद्य-भोजन, गुरु-गौरांगकी सेवाकी छलना कर इन्द्रियतर्पण ही मेरी तृप्तिका साधक हो रहा है। कीर्त्तनविग्रह श्रीश्रीगौरसुन्दरके प्रकाश-विग्रह शुद्ध कीर्त्तन प्रचारकारी श्रीगुरुदेवने मुझे आज्ञा दी है—

"जारे देख तारे कह कृष्ण उपदेश।
आमार आज्ञाय गुरु हञा तार एइ देश॥
इहाते ना बाधिबे तोमार विषय-तरंग।
पुनरपि एइ ठाँइ पाबे मोर संग॥"

मैंने श्रीगुरुदेवकी इस आदेश वाणीका मेरे दुर्दैवके कारण पालन न कर दूसरे प्रकारसे इसका अर्थ समझ लिया है। मैं मौखिक रूप 'गुरु-गौरांगका प्रचारक' कहते हुए भी कार्यतः अपना ही प्रचार कर रहा हूँ। कीर्त्तनमें मेरा कीर्त्तन-विग्रह श्रीश्रीगौरचन्द्र एवं तदभिन्न-तनु कीर्त्तनकारी श्रीगुरुदेवका संग प्राप्त नहीं हो रहा है। कीर्त्तनको अपने भजनांगके रूपमें नहीं कर पा रहा हूँ। मैंने समझ रखा है कि मुझे अपनी कीर्त्तन सुननेकी आवश्यकता नहीं है, दूसरोंको सुनानेके लिए ही मेरा कीर्त्तन है। कीर्त्तनद्वारा कीर्त्तनविग्रह या कीर्त्तनकारी श्रीगुरुदेवका मनोऽभिष्ट-सेवा कितनी हो रही है, इस विषयमें एकबार भी मनन नहीं करता।

किन्तु वे कीर्त्तनीय विषय मेरे कपटतापूर्ण हृदयमें स्थान नहीं पाते। कीर्त्तनकारी गुरुदेवने कीर्त्तनद्वारा शुद्धभक्तिसिद्धान्तको मेरे हृदयमें नित्य अधिष्ठित कराने के लिए ही कीर्त्तन-श्रवण कराकर उक्त कीर्त्तन विषयमें अधिकार प्रदान करनेके लिए 'गुरु हञा तार एइ देश'—यह आज्ञा दी है, उसे मैं विस्मृत हो चुका हूँ। मुझे सेवामें सम्यक् प्रकारसे अधिकार प्रदान करनेके लिए ही जिन अवंचक गुरुदेवने मुझे 'आत्मसम' बना लिया है, उनकी बात भूल चुका हूँ। मैं अपने आपको 'गुरु' होनेका अभिमान करता हूँ। मुहूर्त्तमात्रके लिए भी सेवा नहीं करने पर मेरा गुरुत्व नहीं रहेगा, अतएव ऐसा होने पर मेरे अधिकारकी विच्युति होगी—यह बात एकबार भी नहीं सोचता। मैं श्रीगुरुगौरांगकी शिक्षासे इतना विक्षिप्त होगया हूं कि दिनान्तमें एकबार भी यह नहीं सोचता कि आज मैंने श्रीगुरुगौरांगकी सेवामें कितना अधिकार पाया था एवं आज मेरा चित्त कितने परिमाणमें सेवोन्मुख हुआ है। मैं इतना जड़ तृप्त हो पड़ा हूँ कि किसी भी विषयमें मेरी चिन्ता भावना बिलकुल ही नहीं है। मैं कीर्त्तनाख्या भक्तिद्वारा अनुक्षण हरिचिन्ता करनेके लिए ही स्त्री, पुत्र, गृह, संसार, सांसारिक-चिन्ता, बहिर्मुख जनसंग आदिका परित्याग कर आया हूं। किन्तु मेरे यहाँ आनेपर हरिभजनकी चिन्ता भी विदूरित हो गयी है। मैं अनेकों प्रबन्ध लिखता हूं, उच्च आसन पर बैठकर कितने ही व्यक्तियोंके निकट न जाने क्या-क्या बातें कहता हूँ एवं वक्तृता देता हूँ। किन्तु एकबार भी यह नहीं सोचता कि श्रीगुरुदेवने जो सभी बातें कीर्त्तन करनेके लिए बतलाया है एवं बतलाते हैं, वह क्या मैं पालन कर रहा हूं? प्रबन्ध लिखना, वक्तृता देना आदि कार्य कपटता है या गुरुसेवा है—यह नहीं सोचता। मेरे लिखित प्रबन्ध या वक्तृताके विषयको श्रीगुरुदेवने सर्वप्रथम मेरे ही निकट कीर्त्तन किया था, मेरे ही मंगलके लिए सर्वप्रथम मेरे प्रात्यहिक जीवनमें परिपालन करनेके लिए ही मुझे श्रवण कराया था एवं मुझे श्रुतविषयमें दृढ़रूपसे प्रतिष्ठित करानेके लिए ही प्रबन्ध एवं वक्तृता आदिद्वारा हरिकथा कीर्त्तनका अवसर प्रदान किया था। इस प्रकार उन्होंने मेरे एवं मुझ जैसे अवस्थापन्न असंख्य जीवोंके मंगलके लिए यत्न किया है। क्या मैं श्रीगुरुदेवकी इस करुणामयी लीलाकी बात एकबार भी चिन्ता करके देखता हूँ?

मैं दूसरोंके निकट सैकड़ों बार सैकड़ों प्रबन्धोंद्वारा, सैकड़ों स्थानोंमें, पाठ-वक्तृता

आदिमें "लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसंभावन्ते" श्लोक की आवृत्ति किया करता हूँ। समय-समय पर सोचता हूँ कि यह श्लोक आवृत्ति करते-करते पुराना हो गया है। यदि मैं इस श्लोककी एकबार भी सेवोन्मुख होकर आवृत्ति करता, तो 'सुदुर्लभ', 'अर्थद', 'अनित्य' आदि शब्दोंके यथार्थ तात्पर्य मेरे कानोंमें प्रवेश करते। तो क्या मैं इस जड़-परितृप्तिको लेकर चुपचाप बैठा रहता? यदि "तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु यावत्" यह अन्तिमचरण वास्तवमें मेरे हृदयमें स्थान पाता, तो क्या मैं गुरुदेवके आदेशानुसार कृष्णान्वेषण-चेष्टामें व्याकुलता प्रकाश न कर अपने सुखान्वेषण-चेष्टामें मत्त रहता?

बहुत बड़े सौभाग्यसे भुवनैकपूज्य परम-पावन गुरुदेव प्राप्त कर भी यदि मैं मेरे नित्य-मंगल संग्रहमें उदासीन रहा, तो मेरे समान और कौन वंचित है? श्रीगुरुदेव कृपा कर स्वयं एवं उनके एकान्तानुगत प्रिय व्यक्तिके द्वारा सर्वदा मेरे निकट जो सभी महान् आदर्श उपस्थित कर रहे हैं, मैं मर्त्यबुद्धि एवं असूयापरवश होकर श्रीगुरुदेव एवं श्रीगुरु-सेवकोंका वह आदर्श ग्रहण कर नहीं सका। उलटे मैं कार्यतः गुरुसेवामें उदासीन रहकर भी अपनेको एक प्रधान गुरुसेवक, कभी तो गुरुके प्रियतम पार्षदोंमें अन्यतम कहकर प्रचार करनेके लिए ही विशेष उत्साहयुक्त हो पड़ा हूँ एवं उस अबंध उत्साहके वशवर्ती होकर गुरु एवं वैष्णवोंको मर्त्य जीवोंकी तरह अल्पज्ञ और अदूरदर्शी समझकर उनकी आँखों में धूलि झोंकनेके लिए नाना प्रकारकी कपटताका आश्रय ले रहा हूँ। श्रीगुरुदेव एवं श्रीगुरुदेवके प्रियतम व्यक्तिको मेरी सेवा-विमुखता जानने न देकर मेरी सेवाविमुखता या प्रतिष्ठाशाको ही 'श्रीगुरुसेवा' कहकर चलानेके लिए मैं स्वयं ही अपना प्रचारक हो पड़ा हूँ। मैं एकबार भी निष्कपट रूपसे मेरी सेवाकी अयोग्यताकी चिन्ता या मेरे हृदयके अनर्थोंको सरल रूपसे श्रीगुरु वैष्णवोंके निकट निवेदन—इनमें से एक भी कर नहीं पा रहा हूँ। मुझे मेरी प्रतिष्ठा छूट जानेका भय है। श्रीगुरुदेव एवं श्रीगुरुके प्रियतम व्यक्तिके निकट 'मैं बहुत ही सेवानिरत हूँ'—यह दिखलानेके लिए कितने प्रकारका कौशल विस्तार कर रहा हूँ। हाय! हाय! इसकी अपेक्षा श्रीगुरुवैष्णवोंके प्रति मर्त्यबुद्धि क्या हो सकती है? मैं जिस डाल पर बैठा हूँ, उसीको काट डालनेके लिए व्यस्त हूँ! मैं जिस बातका प्रचार करता हूं, उसके विपरीत ही आचरण कर रहा हूँ। प्राकृत सहजिया ओंकी मौखिक रूपसे निन्दा करने पर भी यथार्थ रूपसे उन लोगोंकी चित्तवृत्तिको 'असत्संग' न समझकर उसे ही ग्रहण कर रहा हूँ। सेवोन्मुखताके अभावमें प्रकृत उद्देश्यसे भ्रष्ट होकर अवान्तर उद्देश्यमें मैंने मनोनिवेश किया है।

सम्यक् प्रकारसे सेवाधिकार प्रदान करने के लिए ही श्रील गुरुदेवने मुझे 'आमार आज्ञा गुरु हञा तार एइ देश'—यह उपदेश दिया है। किन्तु मर्कटतुल्य मैं गजमुक्ताका आदर न कर सका। सेवाधिकारको भोग्य-प्रतिष्ठाका आकर-स्थान समझकर स्वयं अपने को श्रीगुरुदेवके आसनमें बैठनेकी कल्पना करने लगा। 'गुरुके सेवक मेरे मान्य हैं'—यह बात सम्पूर्ण रूपसे भूलकर गुरु-सेवकको गुरु-सेवामें नियुक्त न कर अपनी ही सेवामें नियुक्त कर

लिया ! अपनेको 'गुरुदासानुदास' कहकर भी मन-ही-मन गुरुसेवकोंको अपनेसे हीन समझकर उन्हें गुरु-सेवामें नियुक्त कर उनके मंगल करनेके अपेक्षा मेरी सेवामें नियुक्त करनेमें ही श्रेयः समझता हूँ। मैं वंचित होनेके लिए ही तीव्र अभिलाषयुक्त हूँ ! वैष्णवोंकी 'वञ्चना' क्या है, वैष्णवसंगमें बहुत समय रहकर भी यह बात जान न सका। वैष्णव लोग मेरी परीक्षा करनेके लिए कितने ही प्रकारके सम्मानसूचक वाक्य कहते हैं जिन्हें मैं पाकर मैं अपने आपको सर्वश्रेष्ठ मान बैठता हूँ एवं जगदुद्धारके लिए व्यस्त हो पड़ता हूँ। मेरी सेवासे जगद्वासी कृतार्थ हो जायेंगे—ऐसा सोचता हूँ। गुरु होनेके लिए मुझमें बड़ी अभिलाषा है, किन्तु एकबार भी 'शिष्य' होना नहीं चाहता। वैष्णवोंकी वंचनाको ही उनका मेरे प्रति स्नेहाधिक्य समझकर उन लोगोंकी यथार्थ कृपाको 'कृपा' या 'स्नेह' समझ नहीं पा रहा हूँ। अतएव यदि वैष्णव लोग करुणापरवश होकर मेरे हृदयके अनर्थोंको बतला दें, तो मैं उनके प्रति असन्तुष्ट होकर उन्हें मेरे हिंसक समझकर उनके प्रति अपराध कर बैठता हूँ।

"भाल ना खाइबे, आर भाल ना परिबे। अमानी, मानद हये कृष्णनाम सदा लबे॥"—इस उपदेशके योग्य अपनेको नहीं समझता। कभी तो अपनेको इस उपदेशसे अतीत मानता हूँ अथवा युक्त वैराग्यके छलसे इससे बचनेका प्रयास करता हूँ। स्थूल भावसे स्त्रीसंग परित्याग करनेपर भी कृष्णसेवेतरवासना रूपा योषित्ने मेरी बुद्धिको विपथगामिनी बना दिया है। स्थूलरूपसे 'ग्राम्यकथा' परित्याग कर भी नाना प्रजल्प, वैष्णव-निन्दा, वृथा-हास्य-परिहास, परचर्चा आदिने श्रीगुरुदेवके अनुक्षण हरिकीर्त्तन करनेके आदेशसे मुझे दूर निक्षेप कर दिया है।

मैं इस बातको जानता हूँ कि मैंने सर्वश्रेष्ठ वैष्णव-महाजनका आश्रय लिया है। किन्तु अपनी स्वतन्त्रताको नहीं छोड़नेके कारण यथार्थ आश्रित नहीं हुआ हूँ—इस बातको समझ नहीं पाता। दूसरोंके निकट सम्मान पानेके लिए अपनेको श्रेष्ठ व्यक्तिके अनुगत कहकर परिचय देकर भी वास्तवमें मैं अपने दुष्ट मनके ही अनुगत हूँ। कभी तो असूयापरवश होकर सोचता हूँ कि मेरे सतीर्थ गुरुभ्राता जब श्रीगुरुगौरांगकी अहैतुकी सेवाद्वारा श्रीगुरुदेवकी अहैतुकी प्रीतिके पात्र हुए हैं, तब मैं भी क्यों न सेवाकी छलना कर वैसी अहैतुकी प्रीतिका पात्र बनूँ ? मेरे इस दुर्दैवका कारण श्रीगुरुवैष्णवोंके प्रति मर्त्यबुद्धि ही है, यह जान नहीं पाता। इस प्रकारकी श्रीगुरुदेवके प्रति 'मर्त्यबुद्धि' एवं श्रीगुरुसेवकके प्रति 'असूयाबुद्धि' लेकर कदापि श्रीगुरुकृपा प्राप्त नहीं कर सकता--यह जान नहीं पा रहा हूँ। श्रीगुरुसेवकोंकी अवज्ञा कर कदापि मेरा मंगल नहीं हो सकता। मेरी कपटताको अन्तर्यामी श्रीगुरुदेव जान जायेंगे तो मैं चिरकालके लिए श्रीगुरु-कृपासे वंचित हो जाऊँगा।

श्रीगुरुदेव कितने अपार करुणाशील हैं, यह बात मेरे दुर्भाग्यके कारण समझमें नहीं आती। वे निष्कपट सेवोन्मुख व्यक्तियोंको उनके अनुग्रहद्वारा संवर्द्धन कर रहे हैं एवं सेवाके छल-प्रदर्शनकारी कपटी व्यक्तियोंके प्रति नाना प्रकारसे निग्रह एवं उदासीनता दिखलाकर मुझे निष्कपट रूपसे हरिसेवोन्मुख करनेके लिए निरन्तर शिक्षा प्रदान कर रहे हैं।

जगद्गुरु स्वयं भगवान् श्रीगौरसुन्दरने छोटे हरिदास-वर्जन-लीला एवं श्रील माधवेन्द्रपुरीपादद्वारा श्रीरामचन्द्रपुरी-निग्रह-लीलाद्वारा जगत्को जो शिक्षा प्रदान की है, वह क्या एकबार भी मेरी चिन्तामें नहीं आती ? हाय ! हाय ! अपराध फलसे मेरा हृदय इतना वज्रकठोर हो गया है कि श्रीगुरुगौरांगकी अभूतपूर्वा एवं अश्रुतपूर्वा करुणामयी-लीलावारिधिमें मेरा हृदय अभी भी द्रवित नहीं हो रहा है। इस विपत्तिसे मेरी कौन रक्षा करेगा ? परदुःखदुःखी श्रील ठाकुर नरोत्तमदासकी शिक्षानुसार स्खलित व्यक्तियोंके एकमात्र आश्रय, पतितपावन श्रीगुरु वैष्णवोंके पादपद्मोंमें पुनः निष्कपट रूपसे शरणग्रहणको छोड़कर और कोई उपाय नहीं है। वैष्णवोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे मुझपर अहेतुकी कृपाकर मेरी कपटता दूर करें एवं मैं श्रीगुरुपादपद्मसेवा प्रार्थी होकर निष्कपट रूपसे ऐसी प्रार्थना कर सकूँ—

"अदोषदर्शी प्रभो ! पतित उद्धार । एइबार ए अधमे करह निस्तार ॥"

(साप्ताहिक गौड़ीयसे अनूदित)

कृष्णभक्तकी प्रबल आशा

न प्रेमा श्रवणादिभक्तिरपि वा योगोऽथवा वैष्णवो-
ज्ञानं वा शुभकर्म वा कियदहो सज्जातिरप्यस्तिवा ।
हीनार्थाधिकसाधके त्वयि तथाप्यच्छेद्यमूला सती
हे गोपीजनवल्लभ ! व्यथयते हा हा मदाशैव माम् ॥

हे गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्ण ! तुम्हारे चरणोंमें मेरा प्रेम नहीं है, श्रवण-कीर्त्तनादि भक्ति या विष्णु-ध्यानमय योगसाधन नहीं है या ब्रह्मनिष्ठ ज्ञान भी नहीं है; वर्णाश्रमाचारादि शुभकर्म अनुष्ठान भी नहीं है। अधिक क्या कहूँ, जो सज्जातित्व योग, ज्ञान, शुभकर्मादि अनुष्ठान योग्यता प्रदान करता है, वह भी मुझमें नहीं है। तथापि तुम अकिञ्चन व्यक्तियोंकी आवश्यकता की ओर ही अधिक ध्यान देते हो, अतएव तुम्हें निश्चय ही प्राप्त करूँगा—ऐसी एक मेरी अपनी सुख-कामनासे परिवर्द्धित प्रबल आशा सुदृढ़ता प्राप्तकर मुझे बहुत व्यथित कर रही है।

(श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुधृत श्रीसनातन गोस्वामीके वचन)

मठवासका तात्पर्य एवं उद्देश्य

प्राचीनकालमें ऋषि, मुनि, सन्त, महात्मा, भक्तजन परम वैराग्य एवं त्यागमय जीवनका अवलम्बन करते हुए निर्जनमें एकाकी रहकर एकनिष्ठताके साथ हरिभजन किया करते थे। वे लोग किसी विषयी या राजा-महाराजा, धनी आदि जागतिक व्यक्तिकी अपेक्षा कदापि नहीं रखते थे एवं भोजन, आच्छादन आदि के लिये उन्हें किसी विषयकी चिन्ता नहीं रहती थी। वे परिव्राजक होकर इस भूतलमें सर्वत्र विचरण किया करते थे। इसके उदाहरण सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, देवर्षि नारद, विश्वामित्र, अपान्तरतमा आदि महाजन लोग थे। क्रमशः जब मनुष्योंके त्याग, वैराग्य, कष्ट-सहनशीलता आदि क्षीण होते चले एवं निर्जनतामें बाधा उपस्थित होने लगी, तब साधु-वैष्णव लोग कुटी-आश्रम आदि निर्माण कर आश्रमोचित विधि-नियमों को अंगीकार करते हुए हरिभजन करने लगे। घोर कलिकालके प्रभावसे जब और भी तरह तरहकी बाधाएँ एवं प्रतिबन्धक उपस्थित होने लगे एवं दूसरोंकी सहानुभूति एवं सहायताकी अपेक्षा बढ़ने लगी, उस समय साधुसंत लोग सामूहिक रूपमें रहकर अपने भजन-साधन आदि किया करते थे।

कलियुग पावनावतारी स्वयं भगवान श्रीश्रीचैतन्यमहाप्रभुने कलिकालके बद्धजीवों की महान दुर्दशाको देखकर स्वयं सपार्षद इस भूतलमें प्रकट होकर अपने अपौरुषेय आचार और प्रचारके माध्यमसे जगज्जीवोंको शुद्ध हरिभजन करनेकी शिक्षा प्रदान की। वे वे अपने समस्त भक्तवृन्दोंको लेकर सामूहिक रूपसे भजन-संकीर्त्तन आदि करते थे। उन्हींके आदेश एवं ऐकान्तिक प्रेरणासे श्रीरूप, श्रीसनातन आदि गोस्वामीगण सब प्रकारके वैभव, भोग-विलास आदिका सम्पूर्णतया परित्यागकर परम वैराग्य एवं त्यागमय जीवन व्यतीत करते हुए अनिकेत होकर श्रीकृष्णभजन करनेका आदर्श जगतमें स्थापन कर गये हैं। उनके परवर्त्तीकालमें भी श्रीनिवास, श्रीनरोत्तम और श्यामानन्द प्रभु—इन प्रभुत्रय एवं अन्यान्य महाजनगण इसी आदर्श को अक्षुण्ण रखते हुये बद्ध जीवोंको शुद्ध कृष्ण भजन करनेकी शिक्षा प्रदान कर गये हैं। सप्तमगोस्वामीके रूपमें प्रसिद्ध जगद्गुरेण्य ॐ विष्णुपाद श्रीलसच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरने भी इसी आदर्शका वैष्णव जगतमें प्रचलन किया है। उनके प्रकटकाल तक हरिभजन-इच्छुक व्यक्तियोंके लिये मठ-मंदिर एवं भजन-परिवेशयुक्त स्थान आदिका विशेषरूपसे संस्थापन आवश्यक प्रतीत नहीं हुआ था।

किन्तु वर्तमान बीसवीं शताब्दीके जगद्विख्यात महापुरुष ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरने इस मर्त्य-जगतमें स्वयं भगवान श्रीश्रीगौरचन्द्रकी ऐकान्तिक प्रेरणासे कृपापूर्वक प्रकट होकर वैष्णव-जगतमें एक विप्लवकारी अथच अभिनव एवं असामान्य आदर्शका स्थापन किया है। वर्तमानकालकी बढ़ती हुई समस्याएँ, जड़ वैज्ञानिक उन्नति एवं भौतिकवाद

की अन्धाधुन्धता, जगतवासी जीवोंकी भजन विमुखता एवं भजन-विरोधिता तथा सर्वत्र एकान्त हरिभजन करनेके योग्य वातावरण की कमीको देखते हुए साधारणसे साधारण व्यक्तियोंको भी हरिभजन करनेके उपयुक्त संघ एवं परिवेशयुक्त मठ-मंदिर आदि स्थापन कर उन्होंने समयोचित रूपसे बद्ध-जीवोंपर ऊपर कृपा की है । अतः जीवोंकी नित्यसिद्ध वृत्तिको जाग्रत करनेके लिये, उनको अपने स्वाभाविक धर्मपर चलानेके लिये, उनको सत्व-रज तमोगुणयुक्त मायिक शृङ्खलासे मुक्त करानेके लिये, उनके सांसारिक दावानलको निर्वापित करनेके लिये, उनकी कृष्णोन्मुखी सुकृति करानेके लिये ही परम कारुणिक श्रीश्रीलप्रभुपादजीने मठमें निवास करनेकी व्यवस्थाका प्रचलन किया है।

प्राचीन कालमें ब्रह्मचारी गृह त्यागकर वनमें गुरु-आश्रममें विविध शिक्षा प्राप्त करते थे एवं ब्रह्मचर्य व्रतका पालन कर हरिभजन करते थे । उसी व्यवस्थाका जगतके परम-हितकारी श्रीश्रीलप्रभुपादजीने पुनः प्रचलन किया है एवं कृष्णका संसार करते हुए स्वयं हरिभजन कर दूसरे भगवद्विमुख व्यक्तियों से भी हरिभजन कराना ही मठमें वास-करनेका प्रधान ध्येय बतलाया है ।

मनुष्य की परम आयु कलिकालमें १०० वर्ष मानी गयी है जिसमें उसकी आयुका अर्ध-भाग निद्रामें व्यतीत हो जाता है । शेष ५० वर्षों में सांसारिक व्यक्ति बाल्यकालके खेल-कूदमें, युवावस्थामें विषयसुख भोग करने एवं स्त्री, पुत्र, कुटुम्बीजनके मोहमें एवं अन्तमें वृद्धावस्थाके कष्ट-भोगमें व्यतीत कर देता है। उसको संसारमें रहकर अपने परम कर्त्तव्य हरिभजन करने का अवसर ही नहीं मिल पाता है एवं जिन स्त्री-पुत्र कुटुम्बी जन, धन, पशु आदिके लिये बहुत कष्ट करता है वे भी अंतमें कुछ सहायता नहीं करते एवं कुछ सुख भी प्रदान नहीं करते । अतएव भागवतकी वाणी है—

नित्यार्तिदेन वित्तेन दुर्लभेनात्म-मृत्युना ।
गृहपत्याप्तपशुभिः का प्रीतिः साधितैश्चलैः ॥

अतः स्त्री, पुत्र, धनादिका प्रयास न करके भगवान मुकुन्दके चरणाम्बुजका ही भजन करना चाहिये । अतएव महाजनोंने यह उपदेश दिया है:—

तत्प्रयासो न कर्त्तव्यो यत आयुर्व्ययः परम् ।
न तथा विन्दते क्षेमं मुकुन्दचरणाम्बुजम् ॥

इसी उद्देश्यको सर्वदा ध्यानमें रखकर हरिभजनमें प्रवृत्त होना चाहिये । श्रीमन्महा-प्रभुकी शिक्षाओंको अवलम्बन करना सभी मठवासियोंका परम कर्त्तव्य है । इस सम्बन्धमें श्रील प्रभुपादजीका यही मत है कि हम लोग इस जगतमें कोई काठ, पत्थर के मिस्त्री बनने नहीं आये हैं, हमलोग श्रीचैतन्यदेवकी वाणीके वाहक मात्र हैं । अतः महाप्रभुके पार्षदवृन्द एवं रूपानुग व्यक्ति जिस प्रकार भजन करनेका आदर्श प्रदर्शित कर गये हैं उन्हीं आचरणोंके अनुसार हरिभजन करना सभी मठवासियोंका ऐकान्तिक कर्त्तव्य है । वर्त्तमान समयमें सप्तम गोस्वामीके रूपमें विख्यात श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने हरिभजन करने की आदर्श पद्धति जगतमें प्रकाशित की है। अतः उनकी आचरित एवं प्रचारित शिक्षा एवं उनके ग्रन्थोंके अध्ययनसे प्राप्त शिक्षाका अवलम्बन करना प्रत्येक हरिभजन-इच्छुक

व्यक्तिके लिये परमावश्यक है। मठवासको साधारण कर्मविशेष न समझकर इसे कृष्ण-सेवाका अनुकूल संसार जानना चाहिये। प्रत्येक मठवासीको अन्य सभी प्रकारकी विषय वासनाओंका पूर्णतः परित्यागकर निरन्तर हरिनाम करते हुए अपने अमूल्य मनुष्य जीवनको सफल बनाते हुए दूसरे जगतवासी जीवोंके लिये यथार्थ आदर्श बनना चाहिए।

यदि हरिस्मरणको छोड़कर कोई भी कार्य किया जाय, तो कर्मबन्धन और भी प्रबलरूपसे हमें अपने पाशमें आबद्धकर देगा। अतएव जगद्गुरु श्रील प्रभुपादजीने कहा है—"हरिनाम न करने पर जीव कर्मी, ज्ञानी या अन्याभिलाषी हो पड़ेंगे। इसलिये सर्वदा भगवानको महामन्त्रका उच्चारणकर आह्वान करना चाहिये।" हरिनाम संकीर्त्तनरूपी महान यज्ञमें अपने आपको पूर्णरूपसे आहुति देनेके लिये सर्वदा प्रस्तुत रहना चाहिये जैसा कि श्रील प्रभुपादजीने भी कहा है—"महाप्रभुके शिक्षाष्टकमें लिखित 'परं विजयते श्रीकृष्ण संकीर्त्तनम्' ही गौड़ीय मठका एकमात्र उपास्य है। हमलोग सत्कर्मी, कुकर्मी, ज्ञानी या अज्ञानी नहीं हैं। हम अकैतव हरिभजनके पादत्राणवाही 'कीर्त्तनीयः सदा हरिः' मन्त्रमें दीक्षित हैं।" मठवासीका उद्देश्य परस्वभावकी निन्दा या परोपदेशकी चेष्टाका परित्याग कर आत्मसंशोधनमूलक होना चाहिये। मठवासियोंका यह कर्त्तव्य है कि वे स्वयं निष्कपट रूपसे एवं ऐकान्तिकताके साथ हरिभजन करते हुए अपने आदर्श चरित्रद्वारा जगतके कृष्णबहिर्मुख जीवोंकी विपरीत रुचिका परिवर्तन कर उन्हें भी कृष्णोन्मुख करनेका प्रयास करें। इस सम्बन्धमें जगद्गुरु श्रील प्रभुपादजीकी वाणी है—"जीवोंकी विपरीत रुचिको परिवर्त्तन करना ही सर्वापेक्षा दयालु व्यक्तियोंका एकमात्र कर्त्तव्य है।" केवल मठकी परिचालनाके उद्देश्यसे अर्थोपार्जन करने से ही यथार्थ मठवास नहीं होता बल्कि महाजनोंके आदर्शको अपने जीवनमें पूर्णतः ग्रहण करते हुए हरिसेवामय जीवन व्यतीत करनेसेही होता है।

मठ पारमार्थिक शिक्षा-दीक्षाका केन्द्र है। मठमें रहनेका उद्देश्य गुरु-वैष्णवोंके आनुगत्यमें रहकर अपना आत्मसंशोधन करते हुए क्रमशः अपने अधिकारोचित भजन चेष्टाका अवलम्बन करते हुए पारमार्थिक राज्यमें प्रवेश कर अपने शुद्ध आत्मगत स्वरूपकी उपलब्धि कर विशुद्ध एवं अप्राकृत कृष्णसेवा प्राप्त करना है। मठमें केवल स्थूल रूपसे वास करना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि जिस महान उद्देश्यकी प्राप्तिके लिये मठमें हमारा पदार्पण हुआ है, सर्वदा उस ओर लक्ष्य रखते हुए अपनेको विशुद्ध पारमार्थिकपथिक बनानेकी आवश्यकता है। जिस प्रकारसे चिकित्सालयमें रोगियोंकी उनके रोगके अनुपातके अनुसार चिकित्सा की जाती है, उसी प्रकार मठ भवरोगग्रस्त मायाबद्ध जीवोंके लिये भगवद्स्मरणरूपी परम औषधि प्रदान कर उनके अनादिकालके भगवद्विमुखतारूप रोगका पूर्णतः उन्मूलन कर

परम निरामय भगवत्सेवानन्दरूप यथार्थ एवं पूर्णस्वास्थ्य प्रदान करता है। अतएव मठवासियोंके लिए यह परम उचित है कि अपने भगवद्विमुखतारूप रोगको बढ़ने न दिया जाय बल्कि जिससे उस रोगका उन्मूलन हो, इस विषयमें सर्वदा जाग्रत एवं प्रयत्नशील रहें। मठमें सभी व्यक्ति एक ही अधिकारके पाये नहीं जा सकते। यहाँ तो विभिन्न प्रकारके अधिकारी एव योग्यताके विचारसे बहुत कुछ विलक्षण प्रवृत्तिके व्यक्तियोंका समावेश है, यद्यपि मूलतः इन सभी व्यक्तियोंका उद्देश्य एकमात्र हरिभजन करना ही है। अतएव सभी व्यक्ति ही परमार्थ जगतके सर्वोच्च आदर्श होंगे, अथवा हो सकेंगे—ऐसा कहना कठिन है। यह मठ सभी प्रकारके व्यक्तियोंकी दुष्कृतिका नाशकर उन्हें सुकृति प्रदान कर विशुद्ध भजनके मार्गमें अग्रसर करानेके लिये है। इसलिये अगर दैववशात् भजन करते-करते किसी मठवासीकी मार्ग-विच्युति अथवा भजनमें शिथिलता देखी जाय, तो उनके प्रति किसी प्रकारका हेय अथवा अनुदार मति प्रकाश नहीं करनी चाहिये। इसलिये गीतामें कहा गया है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(गीता० ९।३०-३१)

मठवासी लोग संसारमें साधारण जनसमाजमें विचरण करते हुए भी उससे परे एवं सर्वाभयदाता करुणाके समुद्र भगवानकी भुजारूपी छत्रछायामें पूर्णतः परिरक्षित हैं। मठमें वास करना एकप्रकारसे गुप्तरूपमें वैकुण्ठवास करना ही है। वाह्यतः ऐसा प्रतीत न होने पर भी यही यथार्थ सत्य है। मठका एकमात्र उद्देश्य भगवान श्रीहरिका पूर्ण प्रीतिविधान है। अतएव मठ एक वैकुण्ठवार्त्ता या पारमार्थिक-सम्वाद प्रेषण-केन्द्र है। अतएव प्रत्येक मठवासी ही भगवान श्रीचैतन्यदेव की अप्राकृत वाणी वाहक मात्र है।

मठवासियों का यह कर्त्तव्य है कि अपने से श्रेष्ठ एवं योग्य वैष्णवोंके आनुगत्य एवं अनुशासनमें रहें और मठके जो भी कार्य किया जाय, उनकी अनुमति एवं परामर्शके अनुसार करें। मठवासियों का यह भी कर्त्तव्य कि वे अपने अमूल्य समयको निद्रा, आलस्य, प्रमाद, अनावश्यक बात-चीत, परनिन्दा, परचर्चा आदिमें न गवाँकर सर्वदा शास्त्रग्रन्थ एवं महाजनों द्वारा रचित भक्तिग्रन्थोंका आलोचन, हरिसेवाके अनुकूल कार्योंका सम्पादन तथा सामूहिक रूपसे सद्वैष्णवोंके साथ हरिसंकीर्त्तन एवं हरिचर्चा आदिमें व्यतीत करें। प्रत्येक मठवासीको अन्यान्य मठवासियोंके साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार एवं आन्तरिक सहानुभूति रखना अत्यन्त आवश्यक है। मठवासियोंको चाहिए कि वे सर्वदा सेवा करनेके लिए उत्सुक रहें एवं जहाँतक सम्भवपर हो, दूसरोंकी सेवा ग्रहण न करें। मठके आदर्शकी रक्षाके लिए एवं पारमार्थिक उन्नतिके लिये मठवासियोंको सर्वदा सचेष्ट रहना चाहिये। मठके कार्योंको केवल

कर्त्तव्यविशेष न समझकर प्रत्येक कार्यको प्रीतिपूर्वक करना आवश्यक है। मठवासियों-का यह कर्त्तव्य है कि वे अपने क्षुद्र-क्षुद्र स्वार्थोंकी ओर ध्यान न दें। बल्कि जिससे जीवमात्रका परमस्वार्थरूप हरिभजन सुष्ठु रूपसे हो, इसके लिये विशेष प्रयत्न करें। किसी भी छोटेसे छोटे या बड़ेसे बड़े सेवा-कार्यके प्रति उदासीनता प्रकाशित न करें।

स्वयं भगवान श्रीश्रीचैतन्यमहाप्रभु द्वारा प्रचारित एवं आचरित शुद्ध भक्ति-धर्मका काय मनोवाक्यसे अपने जीवनमें पालन करते हुए दूसरे व्यक्तियोंको भी कृष्णोन्मुखी सुकृति अर्जन करनेके लिये प्रोत्साहन दें। मठवासियों को सर्वदा असत्संगका परित्याग करना चाहिये एवं जिससे शुद्ध वैष्णवोंके चरणोंमें अपराध न हो, ऐसी सावधानी रखनी चाहिये। मठवासियोंका यह कर्त्तव्य है कि वे सब समय इस विषयमें सचेत रहें कि जिससे उनसे कोई अनुचित कार्य या उच्च वैष्णवोंका मर्यादा लंघन न हो।

वैष्णवोंको उनके अधिकार एवं योग्यताके अनुसार सम्मान एवं आदर करते हुए प्रीति-पूर्वक उनका संग करते हुए कृष्णप्राप्तिके लिये सर्वतोमुखी चेष्टा करें। जिससे अन्यान्य व्यक्तिको भी हरिभजन करनेका श्रेयष्ट सुयोग दिया जा सकें, इसके लिये प्रयत्नशील रहें। इस प्रकारके आदर्शको ग्रहण करने पर ही हम श्रीमन्महाप्रभुकी अहैतुकी कृपा प्राप्त कर सकेंगे एवं राधाकृष्णके चरणोंमें उज्ज्वल प्रेमभक्तिरूपी परम पुरुषार्थ-को लाभ कर सकेंगे। भगवान श्रीहरिके चरणोंमें सम्पूर्ण रूपसे शरणागत होकर उन-पर पूर्णतः निर्भर रहते हुए हरिसेवारूपी व्रतका दृढ़ सङ्कल्प ग्रहण कर नित्यकालके लिये कृष्णसेवानन्द रूपी आनन्द समुद्रमें निमज्जित हो सकें, यही हमारी चरम अभि-लाषा एवं आकांक्षाका विषय होना चाहिये। हम लोग जन्म-जन्ममें श्रीरूपानुग वैष्णवोंकी पदधूलि बन सकें, यही हमारी भगवान गौर-चन्द्रके चरणोंमें ऐकान्ति प्रार्थना है।

—श्रीश्याम किशोर ब्रह्मचारी

श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमा और श्रीगौर-जन्मोत्सव

नवीन-श्रीभक्ति नव-कनक-गौराकृति-पति
नवारण्य-श्रेणी-नव-सुरसरिद्वात-वलितम्।
नवीन श्रीराधाहरि-रसमयोत्कीर्त्तन-विधि
नवद्वीपं वन्दे नव-करुण-माद्यन्नव-रुचिम्॥

—श्रीनवद्वीप वंदना

श्रीधाम परिचय

श्रीनवद्वीपधामको शास्त्रोंमें गुप्त या अभिन्न वृन्दावन निर्दिष्ट किया गया है। श्रीनवद्वीपा-न्तर्गत श्रीधाममायापुरको अभिन्न गोकुल बतलाया है। श्रीव्रजधामके राधाकुण्ड,

श्यामकुण्ड, द्वादशवन, वृन्दावन, मथुरा आदि सभी श्रीकृष्ण-लीलास्थली इस नवद्वीप धाममें गुप्त रूपसे स्थित हैं। कोई-कोई रसिक भक्त श्रीनवद्वीपधामकी परिक्रमा कर इन स्थानोंमें श्रीगौरलीला एवं श्रीकृष्णलीलाका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त करते हैं। गोलोक वृन्दावनके जिस प्रकोष्टमें श्रीकृष्णकी श्रीगौराङ्ग-रूपसे नित्यकाल औदार्य-लीला होती है—उसे ही विष्णुपुरी अथवा श्वेतद्वीप कहते हैं। छान्दोग्य उपनिषद्में इसीको 'ब्रह्मपुर' नामसे उल्लेख किया गया है। इसी नवद्वीपधामको अनेक शास्त्रविज्ञ व्यक्ति अपराध-भञ्जन क्षेत्र भी कहते हैं। क्योंकि इस धाममें निवास करनेसे सौभाग्यवान व्यक्ति सभी प्रकारके अपराधोंसे मुक्त होकर श्रीगौरांग महाप्रभुकी कृपा पाकर श्रीकृष्णलीलामें प्रवेशाधिकार प्राप्त करता है। श्रीनवद्वीपधाममें वास एवं दर्शनका फल महाजनोंने इस प्रकार व्यक्त किया है :—

नवद्वीपे जेवा कभु करये गमन।
सर्व अपराध मुक्त हइ सेइ जन॥
सर्व तीर्थ भ्रमिया तैर्थिक जाहा पाय।
नवद्वीप स्मरणे से पाय ताहारे पाय॥
नवद्वीप दरशन करये जे जन।
जन्मे-जन्मे लभे सेइ कृष्ण प्रेमधन॥
नवद्वीपे शुद्ध भक्ते चरणे पड़िया।
भुक्ति मुक्ति सदा रहे दासीरूपा हञा॥

जगद्गुरु श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरजीने भी श्रीनवद्वीपधामके गोद्रुमद्वीपमें वासकर जीवों-शिक्षाके लिये हरिभजन करनेका आदर्श दिखलाया है एवं जगतवासी जीवोंको सर्व-प्रथम श्रीगौरनाम एवं धाम-निष्ठा प्राप्त कर श्रीकृष्णनाम ग्रहण एवं श्रीकृष्णधाममें वास करनेका उपदेश दिया है। श्रीनवद्वीपधामकी परिधि १६ कोस है। भगवद्पादद्योद्भुता पुण्य-तोया भगवती भागीरथीने इस धामको नौ भागोंमें विभक्त कर दिया है। ये नौ द्वीप ही नवधाभक्तिके क्षेत्र हैं। सीमन्तद्वीप श्रवणका गोद्रुमद्वीप कीर्त्तनका, मध्यद्वीप स्मरणका, कोलद्वीप पादसेवाका, ऋतुद्वीप अर्चनका, जह्नुद्वीप वंदनाका, मोदद्रुमद्वीप दास्यका, रुद्रद्वीप सख्यका और अन्तर्द्वीप आत्मनिवेदन भक्तिका क्षेत्र है। अन्तर्द्वीप श्रीमायापुर शेष आठों द्वीपोंके बीचों बीच कर्णिकाकी तरह स्थित है एवं आठों द्वीप अष्ट दलकी तरह हैं। रसिकशेखर स्वयं भगवान श्रीकृष्ण अपनी तीन अन्तरंग अभिलाषाओंकी पूर्तिके लिये श्रीगौराङ्ग रूपसे अन्तर्द्वीपमायापुरमें आविर्भूत हुए थे। सर्वप्रथम श्रीबलदेवाभिन्न श्रीनित्या-नन्द प्रभुने श्रीजीव गोस्वामीको लेकर इस नवद्वीपकी परिक्रमा की थी। तत्पश्चात् श्रीनिवासाचार्य प्रभु, श्री नरोत्तम ठाकुर और श्रीरामचन्द्र कविराजने श्रीईशानठाकुरके साथ श्रीनवद्वीपधामकी परिक्रमा की। इसके पश्चात् बहुत काल तक श्रीनवद्वीपधामकी महिमा भगवान गौरचन्द्रकी इच्छासे जनसाधारणके समक्ष आच्छन्न थी। वर्तमान युगमें १६ वीं शताब्दीमें श्रीश्रीगौराङ्ग महाप्रभुकी इच्छासे उनके अन्तरङ्ग पार्षद जगद्गुरु श्रीलभक्ति-विनोद ठाकुरने इस मर्त्यजगतमें प्रकट होकर श्रीगौरनाम एवं श्रीगौरधामकी महिमा बद्ध जीवोंके निकट पुनः प्रकाशित की है।

६४ प्रकारके भक्ति अङ्गोंमें कीर्त्तनाख्या भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है। महामान्य श्रीजीव-

गोस्वामीने भी इस बातकी पुष्टि की है कि कलिकालमें किसी भी भक्ति अङ्ग का साधन क्यों न किया जाय, कीर्त्तनाख्या भक्तिके संयोगसे ही करना चाहिये। इसीलिए शुद्ध वैष्णवगण नवद्वीपधामके नौद्वीपोंकी परिक्रमा करते समय तारक-ब्रह्मनाम 'हरेकृष्ण' महामन्त्र का कीर्त्तन किया करते हैं। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सदस्यवर्ग भी इसी पद्धतिका अनुसरण करते हुए कीर्त्तनाख्या भक्तिक्षेत्र श्रीगोद्रुमद्वीपके उद्देश्यसे प्रणाम कर ठाकुर श्रीलभक्तिविनोदकी कृपा याचना करते हुए श्रीधाम परिक्रमाका संकल्प ग्रहण करते हैं एवं प्रत्येक द्वीपमें पहुँचकर उन-उन लीलास्थानोंकी महिमाका कीर्त्तन करते हुए श्रीधामकी परिक्रमा करते हैं।

श्रीधाम परिक्रमाका संक्षिप्त विवरण

पिछले वर्षोंकी भांति इस वर्ष भी स्वयं भगवान श्रीमन्महाप्रभुकी अहैतुकी कृपासे गत ११ फाल्गुन, २४ फरवरी, वृहस्पतिवारसे सेकर १७ फाल्गुन, १ मार्च, बुधवार तक श्रीनवद्वीपधाम-परिक्रमा एवं गौर-जन्मोत्सव विराट समारोहके साथ निर्विघ्न रूपसे सम्पन्न हुए। इस वर्ष यात्रियोंकी संख्या पिछली वर्षकी अपेक्षा बहुत अधिक थी। इस विराट समारोहमें प्रायः दो हजार श्रद्धालु सज्जनोंने भाग लिया था। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्त्तमान सभापति एवं आचार्य परमपूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति-वेदान्त वामन महाराजके आनुगत्यमें परिक्रमाके सभी कार्य सुशृङ्खलरूपसे सम्पन्न हुए।

परिक्रमाके अधिवासके दिन शामको पूज्यपाद श्रीमद् पर्यटक महाराज, समितिके सम्पादक परम पूज्यपाद श्रीमद् त्रिविक्रम महाराज एवं स्वयं परम पूजनीय श्रील आचार्यदेवने परिक्रमाके कार्यक्रमके सम्बन्धमें संक्षेपमें वक्तृता प्रदान की। श्रीधाम परिक्रमाके कार्यक्रमका विवरण देते हुए उन्होंने श्रीधाम-माहात्म्यका कीर्त्तन किया एवं परिक्रमा करनेका यथार्थ फल एवं यथार्थ विधि भी बतलायी।

दूसरे दिन परिक्रमाका प्रथम दिन था। उस दिन सभी यात्री प्रातः ही प्रसाद सेवन कर परिक्रमाके लिये प्रस्तुत हुए। पालकीकी रचना एवं महाप्रभुका शृङ्गार बड़े ही सुन्दर एवं आकर्षक ढङ्गसे किया गया था। पालकीमें श्रीमन्महाप्रभुकी विग्रहके साथ श्रीशालग्राम, श्रीतुलसी, जगद्गुरु श्रील प्रभुपादजी एवं आचार्यकेशरी जगद्गुरु श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीके आलेख्य विग्रह विराजमान थे। सर्वप्रथम यात्राके सदस्योंने जगद्गुरु श्रील केशव गोस्वामीके समाधिमन्दिरकी परिक्रमा की और उनकी वंदना एवं कृपा-याचना करते हुए श्रीमन्दिरकी विग्रहके समक्ष नृत्यगीत आदि कर महामन्त्र का कीर्त्तन करते हुए गंगातट पर पहुँचे। सब यात्री लोग नावके माध्यमसे श्रीगङ्गाजीको पार करने लगे। जिस नावमें पालकी थी, उसीमें परम-

पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजी भी थे। उन्होंने नाव-द्वारा गंगा पार करते समय "पार करेंगे नैया रे भज कृष्ण कन्हैया"—कीर्त्तन बड़े ही सुस्वर कण्ठसे भावमें गद्गद होकर गाया। गङ्गा पार कर परमपूज्यपाद त्रिविक्रम महाराजजीने भक्तमण्डलीके मध्य "निताई पद कमल, कोटि चन्द्र सुशीतल"—कीर्त्तन भावावेशमें नृत्य करते करते किया। उनके साथ सभी संन्यासी एवं ब्रह्मचारी भी नृत्य करने लगे। सम्पूर्ण यात्रियोंके गङ्गा पार कर लेने पर परिक्रमा-संघ आगे बढ़ा और सुरभि-कुञ्जमें उपस्थित हुआ। परमपूज्यपाद त्रिदण्डि-स्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने उस स्थानके अलौकिक माहात्म्यका कीर्त्तन किया। तत्पश्चात् सभी यात्री जगद्गुरु श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरके स्वानन्द-सुखद-कुञ्जमें उपस्थित हुए। वहाँ परमपूजनीय श्रील आचार्यदेवने श्रीभक्तिविनोद ठाकुर की लोकोत्तर महिमाका कीर्त्तन किया एवं उनके श्रीगौरनाम-धामके प्रचारके हेतु आविर्भावका प्रसङ्ग भी उल्लेख किया। ये महापुरुष युगपत् कृष्णलीलामें कमलमञ्जरी एवं गौरलीलामें गौर-पार्षद स्वरूप हैं। तत्पश्चात् परिक्रमा-सङ्घ मध्याह्न कालमें नृसिंहपल्लीमें उपस्थित हुआ। यहीं जलपान आदि की व्यवस्था की गयी। तत्पचात सभी लोग श्रीहरिहर क्षेत्रमें पहुँचे। यहाँ श्रीहरिहर स्वरूप का दर्शन करते हुए सभीने श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें प्रत्यावर्त्तन किया। रात्रिको परम पूजनीय श्रील आचार्यदेव एवं अन्य संन्यासी महोदयोंने भाषण दिये।

दूसरे दिन एकादशीकी तिथि थी। उक्त-दिवस प्रातः ६ बजे ही कोलद्वीपको पारकर परिक्रमा-सङ्घने नवद्वीपस्थित गुप्त राधाकुण्ड की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त उर्द्धमन्थी महाराजने 'जय राधामाधव, जय कुञ्जविहारी' कीर्त्तन बड़ेही गद्गद् स्वरसे भावविभोर होकर नृत्य करते-करते किया। वहाँ सभी सज्जन समुद्रगढ़-तीर्थका दर्शन करते हुए चम्पकहट्ट नामक स्थानमें उपस्थित हुए। यहाँ श्रीगीत-गोविन्द काव्यके रचयिता अप्राकृत कविकुल सम्राट् श्रीजयदेव गोस्वामीने चम्पक वनकी चम्पापुष्पोंद्वारा अपनी सहधर्मिणी परम भक्तिमती पद्मावती देवीके साथ श्रीराधाकृष्ण-की बड़े ही प्रेमपूर्वक आराधना की थी। यहाँ द्विजवाणीनाथ सेवित श्रीगौर-गदाधर श्री-विग्रहके दर्शन कर सभी व्यक्ति दोपहरको मठमें लौटे। रात्रिको परम-पूज्यपाद श्रील आचार्यदेव एवं अन्यान्य पूजनीय वैष्णवोंने उपस्थित सज्जनोंको हरिकथामृत पान कराया।

तीसरे दिन जह्नुद्वीपमें श्रीजह्नुमुनिका आश्रम दर्शन कर परिक्रमा-सङ्घ अप्राकृत विद्यापीठ स्वरूप श्रीविद्यानगर (श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यजीके पाट) में उपस्थित हुआ। पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीभक्तिवेदान्त पर्यटक महाराजने इस स्थानका माहात्म्य कीर्त्तन किया। यहाँ द्वादशीके पारणके पश्चात् परिक्रमाकारी सज्जन श्रीगौर-लीलाके व्यास श्रील वृन्दावनदास ठाकुरके पाट (मोद द्रुमद्वीप या मामगाछी) में उपस्थित हुए। उक्त स्थानका माहात्म्य परम पूजनीय श्रील

आचार्यदेवने कीर्त्तन किया। यहाँसे परिक्रमा-संघ क्रमशः मठमें उपस्थित हुआ।

चौथे दिन सर्वप्रथम परिक्रमाकारी सज्जनोंने श्रीप्रौढ़ामायाका दर्शन किया। परम पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीभक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीने उस स्थानके माहात्म्य एवं प्रौढ़ामायाके सम्बन्धमें भावपूर्ण भाषण दिया। श्रीकन्हायीलाल ब्रह्मचारीजीने 'राधाभजने यदि मति नाहिं भेला' नामक कीर्त्तन बड़े ही सुस्वरसे गाया। तत्पश्चात् सभी लोगोंने श्रीगौर-जन्मस्थान निर्देष्टा परमहंसकुल चूड़ामणि वैष्णव-सार्वभौम श्रीजगन्नाथदास बाबाजी महाराजका समाधि-पीठ दर्शन किया। यहाँ श्रीपाद गजेन्द्रमोचन ब्रह्मचारीजीने वैष्णव-महिमाका कीर्त्तन किया। तदनन्तर परम पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीने परमाराध्यतम श्रील जगन्नाथदास बाबाजी महाराजकी अतिमर्त्य महिमा कीर्त्तन करते हुए भावपूर्ण भाषण दिया। वहाँसे परिक्रमा-संघ गङ्गा पार करके श्रीरुद्रद्वीपमें उपस्थित हुआ। यहाँ एकादश रुद्र, चारों सम्प्रदायोंके वैष्णवाचार्यों एवं मायावाद-प्रवर्त्तक श्रीशङ्कराचार्यजीने स्वयं भगवान श्रीगौरसुन्दरकी आराधना की थी। यहाँ मन्दिर-परिक्रमा एवं विग्रह-दर्शन करनेके पश्चात् पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डि महाराज एवं पूज्यपाद त्रिदण्डीस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराजने निराकार ब्रह्मोपासनाकी हेयता प्रदर्शन कर अद्वैतवादका खण्डन प्रबल रूपसे किया। तत्पश्चात् परिक्रमा-संघ गङ्गा पारकर मठमें उपस्थित हुआ। रात्रिको आरती कीर्त्तनके पश्चात् परम पूजनीय श्रीआचार्यदेव एवं परम पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त हरिजन महाराजजीने श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिक्षाओंपर प्रकाश डालते हुए हरिकथाका श्रवण कराया।

पाँचवें दिन सुबह प्रसाद पाकर अन्तर्द्वीप मायापुरकी परिक्रमाके लिये सभी लोगोंने प्रस्थान किया। इस दिन यात्री-संख्यामें आशातीत वृद्धि हुई। आज परिक्रमा-संघमें परम पूजनीय श्रील आचार्य महोदयके साथ सात त्रिदण्डिपाद भी उपस्थित थे। गङ्गा पार कर श्रीभगवती भागीरथीके पावन तटपर परम पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीने गङ्गावतरणका कारण एवं उसकी महिमाका वर्णन किया। समस्त यात्रियोंके गङ्गा पार होनेपर परिक्रमा-संघ परम पूजनीय श्रीआचार्य महोदयके साथ श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, श्रीगौड़ीय-संघ आदि आश्रमोंमें होता हुआ अद्वैत-भवन, गदाधर-भवन, श्रीवास-अङ्गनका दर्शन करता हुआ जगद्गुरु परमाराध्यतम श्रीलप्रभुपादके समाधिपीठमें उपस्थित हुआ। यहाँ जगद्गुरु श्रील प्रभुपादजीकी जयध्वनिपूर्ण शब्दोंसे आकाश गूँज उठा। परमाराध्यतम श्रील प्रभुपादजीकी वंदनाके पश्चात् परम पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीने श्रील प्रभुपादके सम्बन्धमें बड़ा ही सारगर्भित एवं भावपूर्ण भाषण दिया, जिसे श्रवण कर समस्त संन्यासी महोदय एवं ब्रह्मचारियोंकी आँखोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगा। तत्पश्चात् श्रीचैतन्य मठ एवं

श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी महाराजकी समाधिका दर्शन किया। वहाँ परम पूजनीय श्रील आचार्यदेव एवं परम पूज्यपाद त्रिदण्डि-स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजीने परमाराध्यतम श्रील बाबाजी महाराजकी महिमाका कीर्त्तन किया। तत्पश्चात् श्रीमन्महाप्रभुके कृपा-पात्र चाँदकाजी की समाधिका दर्शन किया। वहाँ परम पूजनीय श्रीआचार्यदेवने चाँदकाजीके सम्बन्धमें वक्तृता प्रदान की। तत्पश्चात् परिक्रमा-संघ अपरान्ह में श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी आविर्भाव-स्थली योगपीठ (श्रीजगन्नाथ मिश्र भवन) में उपस्थित हुआ। यहाँ परम पूजनीय श्रीआचार्यदेवने श्रीचैतत्यमहाप्रभुके आविर्भाव-स्थल एवं उनकी अश्रुतपूर्व शिक्षाओंके सम्बन्धमें बड़ा ही ओजस्वी भाषण दिया। वहाँ निमाई-जन्मस्थल (सूतिकाग्रह), धामेश्वर शिव, श्रीगौर-नित्यानन्द, श्रीनृसिंहदेव एवं श्रीभक्तिविनोद ठाकुरका दर्शनकर परिक्रमा-संघ गङ्गा पार कर मठमें उपस्थित हुआ। रात्रिको आरती-कीर्त्तनके पश्चात् सभी त्रिदण्डिपादोंने श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षाके सम्बन्धमें भाषण दिये।

छठवें दिन श्रीगौराविर्भाव महोत्सव बड़े धूमधामसे मनाया गया। मङ्गल-आरती एवं कीर्त्तन के पश्चात् सुबहसे शामतक श्रीचैतन्य-भागवतका पाठ हुआ। शामको श्रीगौरा-विर्भावके समय बड़े ही उच्चस्वरसे हरिनाम-संकीर्त्तन हुआ एवं उपस्थित सभी त्रिदण्डि-पाद एवं ब्रह्मचारियोंने हस्त उत्तोलनपूर्वक भावमें विभोर होकर नृत्य किया। तत्कालीन कीर्त्तनध्वनि दिग्दिगन्तको प्रकम्पित करती हुई समस्त लोगोंको आनन्द-सागरमें निमग्न-कर रही थी। तत्पश्चात् वैष्णवोंको चरणा-मृत वितरण किया गया। रात्रिको श्रीगौरा-विर्भाव सम्बन्धी भाषण दिये गये।

सातवें दिन दोपहर सभी यात्रियोंको विविध व्यञ्जनयुक्त सुस्वादु महाप्रसादका सेवन कराया गया। नवद्वीप शहरके असंख्य स्त्री, पुरुष, बालक, बालिका पर्यन्तको महा-प्रसाद वितरण किया गया। रात्रिको परम-पूजनीय श्रील आचार्यदेव, संन्यासी महोदय एवं ब्रह्मचारियोंने भाषण दिये। अन्तमें पूज्य-पाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीभक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज एवं पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीभक्ति वेदान्त हरिजन महाराजने श्रीमन्महाप्रभुकी अप्राकृत शिक्षाओंके माध्यमसे हरिकथाका रसास्वादन कराया। इस प्रकार अत्यन्त सुन्दर समारोहके साथ परिक्रमा-कार्य सम्पन्न हुआ। सभी संन्यासी महोदय एवं ब्रह्मचारियोंने बड़े उत्साह एवं एकनिष्ठतासे इस परिक्रमा-कार्यमें सहयोग दिया एवं सभी सेवाकार्योंमें अत्यन्त कुशलताका परिचय दिया।

त्रिदण्ड-संन्यास-ग्रहण

श्रीगौराविर्भावके दिन सुन्दर शुभ अवसरमें समितिके समस्त संन्यासी महोदय, बाबाजी महोदय, ब्रह्मचारीवृन्द एवं यात्रियों-की उपस्थितिमें परमाराध्यतम नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके कृपापात्र श्रीपाद गजेन्द्रभोजन ब्रह्मचारीजी एवं श्रीपाद-वृषभानु ब्रह्मचारीजीने श्रीगौड़ीय वेदान्त

समितिके वर्त्तमान सभापति-आचार्य परम-पूजनीय परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजकेनिकट सत्क्रिया-सार-दीपिका, संस्कार-दीपिका आदि-में वर्णित शास्त्रीय विधियोंके अनुसार त्रिदण्ड-सन्यास ग्रहण किया एवं परमपूजनीय श्रील आचार्यदेवने भी बड़ी प्रसन्नतापूर्वक इन दोनों ब्रह्मचारियोंको मनोवांछित प्रदान किया। श्रीगजेन्द्रमोचन ब्रह्मचारीजी अपने परमा-राध्यतम श्रीलगुरुपादपद्मके निकट हरिनाम एवं दीक्षा प्राप्तकर बहुत दिनोंतक श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूलमठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीप, श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ,चुचुड़ामें विविध प्रकारकी सेवा करनेके पश्चात् अब-तक श्रीगोलोकगञ्ज गौड़ीय मठ, आसामके मठ-रक्षक रूपमें वहाँकी सेवामें नियुक्त हैं। इनका संन्यासका नाम त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्-भक्तिवेदान्त वैष्णव महाराज हुआ है। श्रीपाद वृषभानु ब्रह्मचारीजी बहुत दिनोंतक अपने परमाराध्यतम श्रीगुरुपादपद्मकी सेवा, विभिन्न स्थानोंमें प्रचार कार्य आदिमें नियुक्त थे। इनका संन्यासका काम त्रिदण्डि स्वामी श्रीभक्तिवेदान्त संन्यासी महाराज हुआ है।

—श्रीश्यामकिशोर ब्रह्मचारी

श्रीभागवत-पत्रिकाके सम्बन्धमें विवरण

(१) **प्रकाशनका स्थान**—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा।

(२) **प्रकाशनकी अवधि**—मासिक।

(३) **मुद्रक का नाम**—श्री हर्षगुप्त।
राष्ट्रगत सम्बन्ध—हिन्दू (भारतीय)।
पता—राष्ट्रीय प्रेस, कैन्टियर नगर, मथुरा।

(४) **प्रकाशकका नाम**—श्रीकुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी।
राष्ट्रगत सम्बन्ध—हिन्दू (गौड़ीय वैष्णव)।
पता—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा।

(५) **सम्पादकका नाम**—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज।
राष्ट्रगत-सम्बन्ध—हिन्दू (गौड़ीय वैष्णव)
पता—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा।

६) **पत्रिकाका स्वत्वाधिकारी**—श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी तरफसे उसके वर्त्तमान सभापति-आचार्य और नियामक त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज।
समिति रजिस्टर्ड।

मैं, कुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी, इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारीमें और विश्वासके अनुसार सत्य हैं।

- कुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी

१ अप्रेल १९७२।